मूल्य : 20/-
पंजी. संख्या : 153/2016-17

वर्ष : २
अगस्त २०१७, विक्रमी सम्वत् २०७४-७५
सृष्टि सम्वत् १९६०८५३११८, दयानन्दाब्द १९४
अंक : १४

ओ३म्

।। कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ।।

सत्य और ज्ञान से भरपूर आर्यसमाज नोएडा का मासिक मुखपत्र

विश्ववारा संस्कृति

मानवीय जीवन मूल्यों की संरक्षक पत्रिका

"सा प्रथमा संस्कृतिविश्ववारा"

नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु। अवतु माम्। अवतु वक्तारम्।।

ईश्वर का व्यापक ज्ञानस्वरूप पूज्य और सहज स्वभाव जानकर हम उसकी उपासना करें तथा जीवन में सदा सत्य का आचरण करें।

युग प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती (1824-1883)

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस (पुण्यतिथि : 18 अगस्त)

पं इन्द्र विद्यावाचस्पति (पुण्यतिथि : 23 अगस्त)

पं गंगा प्रसाद उपाध्याय (पुण्यतिथि : 29 अगस्त)

पुस्तकालय कक्ष के उद्घाटन अवसर पर माता चम्पा कपूर जी अपने परिवार के साथ।

रोटरी छात्रावास के उद्घाटन अवसर पर श्री सुधीर जी मिढ्ढा एवं श्री विनोद बुद्धिराजा जी।

महात्मा प्रभु आश्रित देवालय यज्ञशाला में उपस्थित लोग।

मुख्य अतिथि ठाकुर विक्रम सिंह का स्वागत करते श्री अशोक आनंद एवं श्री आर.एल. लवानिया।

महात्मा प्रभु आश्रित यज्ञशाला के उद्घाटन समारोह में उपस्थित श्री दर्शन अग्निहोत्री, श्री ठा. विक्रम सिंह, आचार्य डॉ. जयेन्द्र कुमार, श्री रविन्द्र सेठ, गायत्री मीना एवं अन्य उपस्थित सम्मानित महानुभाव।

ओ३म्

।। कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।।

विश्ववारा संस्कृति

मानवीय जीवन मूल्यों की संरक्षक पत्रिका

संरक्षक
श्री आनंद चौहान, श्री सुधीर सिंघल
श्री रविन्द्र सेठ 'प्रधान'

प्रबंध संपादक
महामंत्री आर्य कै. अशोक गुलाटी

प्रधान संपादक
आचार्य डॉ. जयेन्द्र कुमार

व्यवस्थापक
ओमकार शास्त्री

प्रकाशक और मुद्रक
स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक एवं प्रधान संपादक डॉ. जयेन्द्र कुमार द्वारा वत्स ऑफसेट, मुद्दा हाऊस, सी-ब्लॉक, बारात घर, चौड़ा रघुनाथपुर, सेक्टर-22, नोएडा से मुद्रित एवं आर्य समाज, बी-69, सेक्टर-33, नोएडा, गौतमबुद्धनगर से प्रकाशित किया।

Title Code : UPMU-200652

घोषणा पत्र संख्या : 153/06.06/2016-17

मूल्य

एक प्रति : 20/-	वार्षिक : 250/-
पांच वर्ष : 1100/-	आजीवन : 2500/-

विदेश में वार्षिक शुल्क : 3100/-

अनुक्रमणिका

क्रम सं.	विषय	पृष्ठ
1.	संपादकीय	2
2.	श्रावण : यज्ञमयी नौका	3
3.	वेद का अध्ययन आज भी...	4-5
4.	तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु	6-7
5.	पं. इंद्र विद्यावाचस्पति : संक्षिप्त जीवनी	8-10
6.	वैदिक विज्ञान तथा आधुनिक विज्ञान...	11
7.	आर्य समाज का षष्ठ नियम...	12-13
8.	नेताजी सुभाषचन्द्र बोस...	14-17
9.	'कहो वेद 'हां' या सहो वेदना'	18-19
10.	वर्तमान भारत में श्रीकृष्ण की...	20-21
11.	गीता सार	22
12.	समाचार दर्पण...	23

पाठकवृंद : कृपया स्वयं समाज एवं राष्ट्र के उत्थान के लिए 'विश्ववारा संस्कृति' के आजीवन सदस्य बनकर जीवन पथ को पुष्पित, प्रफुल्लित और प्रमुदित करें। अपका चित्र पत्रिका में प्रकाशित होगा। आपके बहुमूल्य सुझावों का हम स्वागत करते हैं।

लेखकवृंद से अनुरोध है कि रचना मौलिक एवं अप्रकाशित हो, रचना का लेखन स्पष्ट और सुपाठ्य हो। दो प्रतियां उस रचनाकार को भेज दी जाएगी, जिनकी रचना प्रकाशित हुई है।

विज्ञापन दर

पिछला कवर पृष्ठ	:	5100 रुपये
कवर पृष्ठ नं.-2	:	3100 रुपये
कवर पृष्ठ नं.-3	:	2500 रुपये
पूरा पृष्ठ अंदर	:	1000 रुपये
आधा पृष्ठ अंदर	:	600 रुपये

'विश्ववारा संस्कृति' में सभी पद अवैतनिक हैं। प्रकाशित विचारों से संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। सभी विवादों का न्याय क्षेत्र गौतमबुद्धनगर होगा।

संपादकीय कार्यालय

आर्य समाज, बी-69,
सेक्टर-33, नोएडा- 201301
गौतमबुद्धनगर, (उ.प्र.)
दूरभाष : 0120-2505731,
4206693, 9871798221

Web : www.aryasamajnoida.org, E-mail : info.aryasamajnoida33@gmail.com

संपादकीय...

।।ओ३म्।।

श्रावणी पर्व एवं स्वतंत्रता दिवस का महापर्व

मैं सभी सुधी पाठकों को श्रावणी महोत्सव, रक्षाबंधन एवं स्वतंत्रता दिवस की हार्दिक शुभकामानाएं देता हूं। श्रावण के इस महीने में श्रावणी पर्व की अति प्राचीन परम्परा है, श्रवण नक्षत्र से युक्त पूर्णिमा के दिन यह पर्व होता है। इसलिये इसको श्रावणी पर्व कहते हैं। श्रावणी पूर्णिमा के कारण ही इस महीने का नाम श्रावण मास है। श्रावणी पर्व सभी आर्यसमाजों में बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है और मनाया भी जाना चाहिए क्योंकि श्रावणी पर्व को मनाने की परम्परा ऋषियों द्वारा प्रतिपादित प्राचीन परम्परा है। इसी दिन आर्यसमाजी जन यज्ञोपवीत धारण करते हैं। गुरुकुलों में आने वाले विद्यार्थियों को यज्ञोपवीत दिया जाता है। घर-घर और मोहल्ले में यज्ञों का आयोजन होता है। प्रत्येक व्यक्ति को यज्ञ करने का आदेश यजुर्वेद में स्वयं परमात्मा ने दिया है। यज्ञेन यज्ञं यजुर्वेद...। वेदमंत्र के अनुसार सदाचारी विद्वान पुरुष यज्ञ के माध्यम से परमात्मा की पूजा करते हैं। यह मार्ग सबसे प्रथम तथा सबसे श्रेष्ठ है। यज्ञों को नियमित रूप से करने वाले साधु पुरुष मुक्तिसुख एवं परमानन्द को प्राप्त करते हैं।

जगद्गुरु महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भी संस्कार विधि में निर्देश दिया है कि यज्ञ के माध्यम से हम परमात्मा की उपासना करें। महर्षि ने तो यजुर्वेद का भाष्य करते हुए यहां तक लिखा है कि जो व्यक्ति यज्ञ को छोड़ देता है, परमात्मा उसको छोड़ देता है। श्रावणी के दिन लोगों को दैनिक यज्ञ के लिये प्रोत्साहित करें और आर्यसमाज की ओर से उनके प्रशिक्षण की व्यवस्था, यज्ञपात्रों के साथ पुस्तक आदि भेंट करें। नये सदस्यों को सपरिवार आमंत्रित करें, उनको सम्मानित करें, हर समय वैदिक साहित्य की व्यवस्था करें, समाज में बनाकर रखें। अपने बच्चों का आयु व्यवस्था के अनुसार यज्ञोपवीत संस्कार अवश्य करायें। स्वाध्याय की परंपरा को विस्तार दे, जन-जन तक आर्यग्रंथों को पहुंचाने का प्रयास करें, आर्षग्रंथों के स्वाध्याय से भारत की सत्यनिष्ट गौरवमयी परम्परा अक्षुण्य रह सकती है।

आर्यो के जीवन का स्वाध्याय एक प्रमुख अंग रहा है। ऋषियों का आदेश है स्वाध्यायान्मा प्रमदः अर्थात स्वाध्याय में प्रमाद नहीं करना चाहिए। शतपथ ब्राह्मण में स्वाध्याय की प्रशंसा करते हुए ऋषि शतपथ ब्राह्मण में उल्लखित है स्वाध्याय करने वाला शांतमन स्थिति में रहता है। सुख की नींद सोता है। युवा मन होता है, अपना परम चिकित्सक होता है अर्थात आध्यात्मिक रोगों क्रोधादि पर विजय प्राप्त कर लेता है। इंद्रियों का संयम एकाग्रता को प्राप्त कर लेता है। प्रज्ञावान होकर स्थिरता को प्राप्त करता है। देश को आजाए हुए 70 वर्ष हो गये हैं लेकिन मानसिक एवं सांस्कृतिक रूप से हम आज भी गुलाम है। महर्षि दयानंद सरस्वती ने कहा था जिसके देश का अन्न खाते हैं, जल पीते हैं उससे प्रेम करो, अपनी मातृभूमि से प्रेम करो, मातृभाषा से प्रेम करो, मातृसंस्कृति से प्रेम करो, अपने ऋषियों की आर्ष परंपरा को आगे बढ़ायें। अपने को आर्यावर्त का निवासी कहते गर्व का अनुभव करें। अपने को आर्य कहने में गर्व का अनुभव करें। अपना राज्य सर्वोपरि, अपना देश सर्वोपरि, भाषा सर्वोपरि और अपनी संस्कृति सर्वोपरि सर्वोत्तम है। इसी भाव का प्रचार-प्रसार सर्वत्र करें। राष्ट्रीय पर्व को धूमधाम से बनायें। देश को आजाद कराने वाले महान वीरों को नमन करें। जो फांसी पर चढ़े खेल में उनको याद करें। जो वर्षो तक सड़े जेल में उनको याद करें।

■ **आचार्य डॉ. जयेन्द्र कुमार**

जगद्गुरु महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भी संस्कार विधि में निर्देश दिया है कि यज्ञ के माध्यम से हम परमात्मा की उपासना करें। महर्षि ने तो यजुर्वेद का भाष्य करते हुए यहां तक लिखा है कि जो व्यक्ति यज्ञ को छोड़ देता है, परमात्मा उसको छोड़ देता है। श्रावणी के दिन लोगों को दैनिक यज्ञ के लिये प्रोत्साहित करें और आर्यसमाज की ओर से उनके प्रशिक्षण की व्यवस्था, यज्ञपात्रों के साथ पुस्तक आदि भेंट करें। नये सदस्यों को सपरिवार आमंत्रित करें, उनको सम्मानित करें, हर समय वैदिक साहित्य की व्यवस्था करें, समाज में बनाकर रखें। अपने बच्चों का आयु व्यवस्था के अनुसार यज्ञोपवीत संस्कार अवश्य करायें। स्वाध्याय की परंपरा को विस्तार दे, जन-जन तक आर्यग्रंथों को पहुंचाने का प्रयास करें, आर्यग्रंथों के स्वाध्याय से भारत की सत्यनिष्ट गौरवमयी परम्परा अक्षुण्य रह सकती है। आर्यो के जीवन का स्वाध्याय एक प्रमुख अंग रहा है। ऋषियों का आदेश है स्वाध्यायान्मा प्रमदः अर्थात स्वाध्याय में प्रमाद नहीं करना चाहिए। शतपथ ब्राह्मण में स्वाध्याय की प्रशंसा करते हुए ऋषि शतपथ ब्राह्मण में उल्लखित है स्वाध्याय करने वाला शांतमन स्थिति में रहता है। सुख की नींद सोता है। युवा मन होता है, अपना परम चिकित्सक होता है अर्थात आध्यात्मिक रोगों क्रोधादि पर विजय प्राप्त कर लेता है। इंद्रियों का संयम एकाग्रता को प्राप्त कर लेता है। प्रज्ञावान होकर स्थिरता को प्राप्त करता है। देश को आजाए हुए 70 वर्ष हो गये हैं लेकिन मानसिक एवं सांस्कृतिक रूप से हम आज भी गुलाम है। महर्षि दयानंद सरस्वती ने कहा था जिसके देश का अन्न खाते हैं, जल पीते हैं उससे प्रेम करो, अपनी मातृभूमि से प्रेम करो, मातृभाषा से प्रेम करो, मातृसंस्कृति से प्रेम करो, अपने ऋषियों की आर्ष परम्परा को आगे बढ़ायें। अपने को आर्यावर्त का निवासी कहते गर्व का अनुभव करें।

श्रावण : यज्ञमयी नौका

पृथक प्रायन् प्रथमा देवहूतयोऽकृण्वत श्रवस्यानि दुष्टरा।
न ये शेकुर्यज्ञियां नावमारुहमीर्मैव ते न्यविशन्त केपयः।।

–ऋ. १०/४४/६; अथर्व. २०/९४/६
ऋषि :-आग्ङि रसो कृष्णः।।
देवता- इन्द्रः।। छन्दः- निचृज्जगती।।

विनय– भाइयो! इस संसार–सागर से हमें तरा सकने वाली नौका यज्ञमयी ही है। हम यदि यज्ञकर्म नहीं करेंगे तो हम न केवल मनुष्यत्व से ऊपर नहीं उठ सकेंगे अपितु मनुष्यत्व को भी कायम नहीं रख सकेंगे, तब हमें नीचे पशुत्व में अध:पतित होना पड़ेगा। देखो, बहुत–से 'देव–हूति' पुरुष उन देवलोक, पितृलोक, ब्रह्मलोक आदि दुष्प्राप्य यशोमय उच्च लोकों को पहुंच गये हैं। बड़े भारी यत्न से इस मनुष्यावस्था को तरकर देव हो गये हैं। ये लोग यज्ञिय नाव पर चढ़कर ही वहां पहुंचे हैं।

इन्होंने अपने में देवों का, दिव्यताओं का, आह्वान किया है और 'प्रथम' बने हैं। दूसरी ओर वे अभागे मनुष्य हैं जो कि थोड़ा–सा स्वार्थत्याग न कर सकने के कारण, अयज्ञिय हो ऋणबद्ध रहने के कारण, उस नाव का आश्रय नहीं पा सके हैं, अत: यहीं बंधे रह गये हैं।

ये बेचारे 'केपि'= कुत्सिताचरणी लोग यहां भी नीचे धंसते जा रहे हैं, पशुत्व में गिर रहे हैं। इनका फिर पवित्र बनना अब अत्यंत कठिन हो गया है, अत: आओ, मनुष्य योनि पाकर हम कुछ–न–कुछ तो स्वार्थ त्याग करें, इतना यज्ञ–कर्म तो करें कि ऋणबद्ध न बने रहें।

हम पर जो माता, पिता, गुरु, समाज, राष्ट्र, मनुष्यता, प्रकृतिमाता और परमेश्वर आदि के ऋण हैं, उन्हें उतारने के लिए तो अपने स्वार्थों का नित्य हवन किया करें। हम यदि इतना करेंगे, केवल परमावश्यक पंचयज्ञों को यथाशक्ति करते रहेंगे, तो भी हम इस यज्ञिक नौका पर चढ़ सकेंगे और देवयान लोकों को नहीं तो कम से कम पितृयान लोकों को तो जा पहुंचेंगे, अपने मनुष्यत्व को तो नहीं खो देंगे। भाइयों! यज्ञमयी नौका खड़ी है।

हम चाहें तो देवहूति होकर, दिव्यस्वभाव, धर्मशील होकर, यज्ञ–नौका द्वारा इस दुस्तर सागर को तरकर ज्ञानैश्वर्यमय उच्च–से–उच्च लोकों तक पहुंच सकते हैं नहीं तो फिर यदि हम इस नौका में स्थान न पा सके तो हम ऐसी खराब परिस्थिति में आ पड़ेंगे और वहां ऐसे निर्लज्ज बन जाएंगे कि हम कुत्सित, अपवित्र कर्मों के करने में ही सुख पाएंगे और नीचे–ही–नीचे गिरते जाएंगे, फिर हमारे उद्धार का दूसरा अवसर कितने काल बाद आवेगा यह कौन जानता है?

शब्दार्थ–प्रथमाः= जो प्रथम प्रकार के या विस्तृत ज्ञानी **देवहूतयः**= देवों अर्थात् दिव्य गुणों का आह्वान करने वाले मनुष्य होते हैं वे **पृथक**= जुदा ही **प्रायन्**= प्रकृष्ट मार्ग से (अपने–अपने लोकों को) पहुंचते हैं। वे **दुष्टरा**= बड़े दुस्तर **श्रवस्यानि**= ज्ञानैश्वर्यों को, श्रवणीय यशों को **अकृण्वत**= प्राप्त कर लेते हैं, परंतु **ये**= जो **यज्ञियां नावम्**= इस यज्ञमयी नाव पर **आरुहम्**= चढ़ने में **न शेकुः**= समर्थ नहीं होते **ते**= वे **केपयः**= कुत्सित, अपवित्र आचरण वाले होकर **ईर्मा एव**= यहीं इस लोक में **न्यविशन्त**= नीचे–नीचे जाते हैं।

OO

बहुत-से 'देव-हूति' पुरुष उन देवलोक, पितृलोक, ब्रह्मलोक आदि दुष्प्राप्य यशोमय उच्च लोकों को पहुंच गये हैं। बड़े भारी यत्न से इस मनुष्यावस्था को तरकर देव हो गये हैं। ये लोग यज्ञिय नाव पर चढ़कर ही वहां पहुंचे हैं। इन्होंने अपने में देवों का, दिव्यताओं का, आह्वान किया है और 'प्रथम' बने हैं। दूसरी ओर वे अभागे मनुष्य हैं जो कि थोड़ा-सा स्वार्थत्याग न कर सकने के कारण, अयज्ञिय हो ऋणबद्ध रहने के कारण, उस नाव का आश्रय नहीं पा सके हैं, अतः यहीं बंधे रह गये हैं। ये बेचारे 'केपि'= कुत्सिताचरणी लोग यहां भी नीचे धंसते जा रहे हैं, पशुत्व में गिर रहे हैं। इनका फिर पवित्र बनना अब अत्यंत कठिन हो गया है, अतः आओ, मनुष्य योनि पाकर हम कुछ-न-कुछ तो स्वार्थ त्याग करें, इतना यज्ञ-कर्म तो करें कि ऋणबद्ध न बने रहें। हम पर जो माता, पिता, गुरु, समाज, राष्ट्र, मनुष्यता, प्रकृतिमाता और परमेश्वर आदि के ऋण हैं, उन्हें उतारने के लिए अपने स्वार्थों का नित्य हवन किया करें। हम यदि इतना करेंगे, केवल परमावश्यक पंचयज्ञों को यथाशक्ति करते रहेंगे, तो भी हम इस यज्ञिक नौका पर चढ़ सकेंगे और देवयान लोकों को नहीं तो कम से कम पितृयान लोकों को तो जा पहुंचेंगे, अपने मनुष्यत्व को तो नहीं खो देंगे। भाइयों! यज्ञमयी नौका खड़ी है।

वेद का अध्ययन आज भी प्रासंगिक है, वेदों का महत्व

डॉ. भवानी लाल भारतीय

यह इतिहास सम्मत तथ्य है कि वेद संसार के सर्वाधिक प्राचीन धर्म ग्रंथ है। इनका अविर्भाव काल (भारतीय आस्था के अनुसार) या रचनाकाल अनिर्णित है। प्रो. मैक्समूलर जैसे वेदज्ञ का कहना था कि ऋग्वेद के रचनाकाल का निर्धारण अभी संभव नहीं है। तब प्रश्न होता है कि क्या मात्र प्राचीनता ही वह कसौटी है, जो किसी ग्रंथ को सर्वसामान्य के लिए उपयोगी तथा प्रासंगिक ठहराती है। वेदों का अर्थ निर्धारण करने के लिए प्रायः दो पद्धतियां अपनाई जाती हैं। प्रथम है भारत के मध्यकालीन विद्वानों का यह विचार कि वेद मंत्रों की रचना प्राचीन आर्यों ने अपने यज्ञादि कर्मकांडों को निष्पन्न करने के लिए की थी। वे मनु का प्रमाण देकर कहते हैं कि वेद त्रयी (ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद) यज्ञ की सिद्धि के लिए ही इन वेदों का प्रादुर्भाव हुआ। इसके विपरीत मैक्समूलर, ग्रिफिथ, राथ, विल्सन, मैकडानल आदि पाश्चात्य वेदज्ञों ने वेदों का अध्ययन ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में किया। उनके अनुसार मध्य एशिया से आकर जब आर्य लोग गंगा यमुना के प्रांत भाग तथा पांच नदियों के सारस्वत प्रांत में आकर बस गए और यहां के निवास काल में उनके विचारों, जीवन पद्धति तथा उनके आचार-विचार व्यवहार आदि का विश्वसनीय विवरण इन वेदों में देखा जा सकता है।

उपर्युक्त दोनों विचारों से भिन्न एक अन्य पद्धति है जो यह मानती है कि वेदों की रचना मानव के सार्वत्रिक अभ्युत्थान का मार्ग दिखाने की दृष्टि से हुई है। इस विचार को वेद मीमांसक मानते हैं कि वेदों में ऐसी शिक्षाएं हैं जो व्यक्ति के शरीर, मन, बुद्धि तथा आत्मा के उत्थान का मार्ग प्रशस्त करती हैं। साथ ही उसके पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, यहां तक कि निखिल मानवता को उत्कर्ष पर ले जाने के लिए मार्गदर्शन करती हैं। यह तो सत्य है कि मनुष्य की व्यक्ति से भिन्न एक सामाजिक भूमिका भी है। वह अंग्रेजी उपन्यास के पात्र रोबिन्सन क्रूसो की भांति किसी अज्ञात द्वीप में एकाकी जीवन व्यतीत नहीं करता है। परिवार, समाज और राष्ट्र में रहकर वह अपने समस्त जीवन को व्यतीत करता है।

इस दृष्टि से यदि हम वेदों का अध्ययन करें तो इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि इन ग्रंथों में मानव की व्यक्तिगत, साथ ही उसकी समूहगत उन्नति के विविध उपाय वर्णित किए गए हैं। प्रथम, मनुष्य का व्यक्तिगत (शरीर से आरंभ कर मन, बुद्धि तथा चैतन्य (आत्मा) उन्नति के लिए निर्दिष्ट संकेतों की चर्चा करें तो देखते हैं कि वेद ने मानव शरीर में देवभूमि अयोध्या (कभी पराजित न होने वाली) कहा है। अष्टचक्रा नवद्वारा देवनापुरी। अथर्ववेद में यही माना है। इस देवभूमि में जो ज्ञानेन्द्रियां तथा कर्मेन्द्रियां हैं, उनका सम्यक् विकास तथा अभिवृद्धि वेद का दृष्ट है। इसलिए वेद कहता है- भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम् देवा। हम कानों से भद्र वाणी सुनें तथा भद्रंपश्येम अक्षिभि नेत्रों से भद्र, भव्य तथा मंगल विधायक दृश्यों को देखें।

यजुर्वेद का प्रसिद्ध मंत्र तच्चक्षुर्देवहितं संकेत करता है कि मनुष्य सौ वर्ष पर्यन्त, पदाचित उससे अधिक भी स्वस्थ जीवन व्यतीत करे। उसके नेत्र, कान, वाणी आदि स्वस्थ रहें तथा वह निर्भीक होकर निरुपद्रव जीवन व्यतीत करे। मनुष्य का शरीर दृढ़, बलवान तथा सुसंगठित हो, वेद का कथन है- अश्मा भवतुते तनूः तुम्हारा शरीर पत्थर

वेदों का अर्थ निर्धारण करने के लिए प्रायः दो पद्धतियां अपनाई जाती हैं। प्रथम है भारत के मध्यकालीन विद्वानों का यह विचार कि वेद मंत्रों की रचना प्राचीन आर्यों ने अपने यज्ञादि कर्मकांडों को निष्पन्न करने के लिए की थी। वे मनु का प्रमाण देकर कहते हैं कि वेद त्रयी (ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद) यज्ञ की सिद्धि के लिए ही इन वेदों का प्रादुर्भाव हुआ। इसके विपरीत मैक्समूलर, ग्रिफिथ, राथ, विल्सन, मैकडानल आदि पाश्चात्य वेदज्ञों ने वेदों का अध्ययन ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में किया। उनके अनुसार मध्य एशिया से आकर जब आर्य लोग गंगा यमुना के प्रांत भाग तथा पांच नदियों के सारस्वत प्रांत में आकर बस गए और यहां के निवास काल में उनके विचारों, जीवन पद्धति तथा उनके आचार-विचार व्यवहार आदि का विश्वसनीय विवरण इन वेदों में देखा जा सकता है। उपर्युक्त दोनों विचारों से भिन्न एक अन्य पद्धति है जो यह मानती है कि वेदों की रचना मानव के सार्वत्रिक अभ्युत्थान का मार्ग दिखाने की दृष्टि से हुई है। इस विचार के वेद मीमांसक मानते हैं कि वेदों में ऐसी शिक्षाएं हैं जो व्यक्ति के शरीर, मन, बुद्धि तथा आत्मा के उत्थान का मार्ग प्रशस्त करती हैं। साथ ही उसके पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, यहां तक कि निखिल मानवता को उत्कर्ष पर ले जाने के लिए मार्गदर्शन करती हैं। यह तो सत्य है कि मनुष्य की व्यक्ति से भिन्न एक सामाजिक भूमिका भी है।

के समान सुदृढ़ हो। मानव शरीर मात्र भौतिक इकाई ही नहीं है। उसमें मन, बुद्धि, अस्मिता आदि सूक्ष्म उपकरण भी हैं। मन को तो शास्त्रों ने बंधन एवं मोक्ष का कारण माना है- मन एव मनुष्याणां कारणं बंध मोक्षयो। मनुष्य का मन कल्याणकारी संकल्पों वाला हो, इसे यजुर्वेद के शिवसंकल्प मंत्रों में भली भांति निर्दिष्ट किया है। शिवसंकल्प के ये छह मंत्र मानव के मनोविज्ञान को स्पष्ट करते हैं। इन मंत्रों में मन के दिव्य कर्मों का विवेचन है तथा मन को ज्योतियों में दिव्य ज्योति, दूर तक चला जाने वाला, सब प्रकार के कर्मों का नियन्ता बताकर एक ऐसा सारथी बताया है जो अपने इंद्रिय रूपी घोड़ों को कभी पथ से विचलित होने नहीं देता। मन को सद्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देने वाली बुद्धि है। जिसके लिए वेदों में मेधा तथा प्रज्ञा जैसे शब्दों का प्रयोग हुआ है। बुद्धि को प्रशस्त करने, उसे सन्मार्ग पर चलाने की प्रेरणा के लिए मनुष्य सविचा (सर्वसृष्टि को उत्पन्न करने वाला) देव से प्रार्थना करता है। यही प्रसिद्ध मंत्र गायत्री या सावित्री मंत्र कहलाता है। वेदों में निरंतर प्रार्थना है कि हम देवताओं की सद्‌बुद्धि को प्राप्त करें। यहां प्रार्थना की गई है- 'देवानां भद्रा सुमति' को हम प्राप्त करें। साथ ही तेजस्वी परमात्मा से हमारी प्रार्थना है कि- जो मेधा बुद्धि आपने हमारे पूर्वज ऋषियों तथा पितरों को प्राप्त कराई, उससे हमें भी उपकृत करें। यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते आदि।

पारिवारिक सद्‌भावना तथा उन्नति का वर्णन अथर्ववेद के परिवार सूक्त में आता है। जहां पुत्र को माता-पिता के अनुकूल रहने तथा भाई-बहनों से प्रेमपूर्ण व्यवहार करने की हिदायत दी गई है। इसी प्रकार सामाजिक एकता का पाठ पढ़ाने वाले ऋग्वेद के अंतिम संज्ञान सूक्त का आदेश है- संगच्छध्वं संवदध्वं संवो मनांसि जानताम्। देवा भागं यथापूर्वे संजानाना उपासते। सभी मनुष्य एकमत होकर सन्मार्ग पर चलें। एक विचार वाले होकर वाणी में एकता रखें तथा अपने मनों को एक सा बनाएं। समाज के सभी वर्ग एक दूसरे से प्रेम का व्यहार करें, यह भावना 'प्रियं मा कृष्णु देवेष' आदि मंत्रों में व्यक्त की गई है। जहां तक राष्ट्र का संबंध है अथर्ववेद (काण्ड १२, सूक्त १) के भूमि सूक्त को देखना चाहिए। वेदों में पृथ्वी को ही माता माना है तथा धरती पर वास करने वाले मानव को उसका पुत्र- माता भूमिः पुत्रो अहम् पृथिव्याः।

६३ मंत्रों के इस सूक्त में धरती माता के भौतिक, वानस्पतिक, भूगर्भीय तथा सांस्कृतिक वैभव की उज्जवल छवि को नितांत काव्यात्मक शैली में वर्णित किया गया है। अंततः का उपदेश मानव मात्र के लिए है। इन मंत्रों में किसी वर्ग, वर्ण तथा देश काल का संकेत नहीं है। मानव मात्र को मित्र की दृष्टि से देखने वाला यजुर्मंत्र है। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षा महे। यह दृष्टि हमें तब प्राप्त हो सकती है, जब हम निखिल सृष्टि में परमात्मा के सर्वत्र आवास को अनुभव करें। वेद ने इसीलिए कहा- ईशावास्यंमिदं सर्वं, यह सारा विश्व प्रपंच ईश्वर से आच्छादित है। इसे अनुभवकर हम संसार में कर्तव्य पथ पर आरूढ़ हों। अतः वेदों की सब कालों में प्रासंगिकता है।

OO

स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनमोल विचार

- जो लोग दूसरे लोगों की मदद करते है। वह लोग एक तरह से भगवान की मदद करते है।
- माफी दे देना हर किसी के वश की बात नहीं है क्योंकि ये बहुत विवेकशील लोगों की बात होती है।
- जो कभी सुबह और शाम प्रार्थना नहीं करता है वह शूद्र के रूप में बुलाया जाता है।
- कार्य इंसान के विवेक को भ्रमित करके उसे पतन के रास्ते पर लेकर जाता है।
- वह लोग जो दूसरों के लिए अच्छा करते है वह कभी भी आत्म सम्मान और दुरुपयोग के बारे में नहीं सोचते है ।
- काम करने से पहले उसके बारे में सोचना बुद्धिमानी है और यदि काम करते हुए उस पर सोचना सतर्कता होती है, और यदि आप काम खत्म करने के बाद सोचते हो तो आप मुर्ख हो।
- ईर्ष्या से इंसानों को दूर रहना चाहिए। क्योंकि ईर्ष्या इंसान के अंदर ही अंदर जलाती है और इंसानों को उनके रास्ते से भटकाकर उन्हें नष्ट कर देती है।
- जो इंसान हर काम से सन्तुष्ट हों जाय वही इंसान इस दुनिया का सबसे खुश-नसीब इंसान होता है।
- इंसान के आचरण की नींव संस्कार होती है, जितना गहरा इंसान का संस्कार होगा। उतना ही मजबूत उसका कर्तव्य, धर्म, सत्य और न्याय होगा।
- जब एक इंसान अपने क्रोध पर विजय हासिल कर लेता है, अपने काम को काबू में कर लेता है, यश की इच्छा को त्याग देता है, मोह माया से दूर चला जाता है। तब उसके अंदर एक अद्‌भुत शक्ति आ जाती है।
- इंसान की आत्मा परमात्मा का ही अंश होती है जिसे हम अपने कर्म से गति प्रदान करते हैं और फिर आत्मा हमारी दशा को तय करती है ।

OO

तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु

डॉ. मंजु नारंग, डी.लिट.

अंतःकरण चतुष्टम मन, चित, अहंकार तथा बुद्धि में स्थान प्राप्त मन गतिशील तथा चंचल माना जाता है। भौतिकवाद का समर्थन नहीं करने वाले अध्यात्मवादियों के अनुसार जीवन की इस शरीर के अतिरिक्त पृथक संज्ञा है। इसको केवल भौतिक वस्तु नहीं कहा जा सकता है। शरीर, मस्तिष्क तथा तंत्रिका तंत्र से मनुष्य के अर्न्तगत पृथक स्तर पर प्रगट होने वाली शक्ति को मन कहते हैं। इसका कार्य शरीर में घटित होने वाले क्रियाकलापों को अंगीकृत कर लेना अथवा दृष्टा बनकर उसका दर्शन कर लेना मात्र नहीं है, अपितु यह स्वेच्छानुसार स्वतंत्र रूपेण कार्य करता है तथा घटित होने वाली घटनाओं को नियंत्रित भी करता है। इस शरीर में विद्यमान इस आत्मा को रथी कहा गया है। बुद्धि को सारथि तथा मन को उसकी लगाम कहा गया– **आत्मानं रथिनं विद्धि शरीर रथमेव तु। बुद्धिं तु सारथिं विद्धिमनः प्रग्रहमेव च।**

कठोपनिषद ३/३

इसी उपनिषिद में आगे इंद्रियों को अश्व की संज्ञा दी गई है तथा इंद्रिय रूपी अश्व के लिए विषयों को उनका मार्ग बतलाया गया है। शरीर, इंद्रिय एवं मन से युक्त आत्मा को उसका उपभोक्ता बतलाया गया है।

इंद्रियाणि ह्यानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः।

कठोपनिषद ३/४

यह मन जागृतावस्था में पल भर में सैकड़ों तथा सहस्रो मील की यात्रा सम्पन्न कर लेता है। सुप्तावस्था में भी तथा वत– विचरण करता है। वेद में अत्यधिक वेगशील पदार्थो में अतिवेगवान् ज्ञान का साधक होने के कारण इंद्रियों के प्रवर्तक मन को कल्याणकारक मार्ग पर ले जाने की प्रार्थना की गई है–

यज्जाग्रतो दूरमुदौति दैवं तदुसुप्तस्य तथैवेनि।
दूरङ्गम ज्योतिषां ज्योतिरेको तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

यजुर्वेद ३४/१

शंकराचार्य ने स्व प्रश्नोत्तरी में प्रश्न किया किं जगत् केन जितम् 'अर्थात् इस संसार पर किसने विजय प्राप्त की है। इसका उत्तर प्राप्त हुआ' मनो येन जितम् अर्थात् जिसने मन पर विजय प्राप्त की है। इससे यह स्पष्ट हो गया कि इस अखिल विश्व पर विजय मन को नियंत्रित करने से प्राप्त हो सकती है, किंतु यह मन तो कपिवत् इतस्ततः विचरण करता रहता है। वानर जिस प्रकार से एक शाखा से दूसरी शाखा पर उछलता कूदता रहता है, उसी प्रकार से अत्यधिक चंचल यह मन एक स्थान से दूसरे स्थान पर विचरण करता रहता है। गीता में श्री कृष्ण ने कहा है कि यह मन निश्चित रूप से चंचल है, मथित करने वाला, शक्तिशाली तथा दृढ़ है। इसका निग्रह करना वायु को वश में करने के समान पर्याप्त दुस्कर तथा दुस्साध्य है–

चंचलः हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृशम्।
तस्याहं निग्रहं मन्थे वायोरिव सुदुस्करम्।

गीता ६/३४

श्रीकृष्ण ने मन को नियंत्रित करना दुष्वार मानते हुए समाधान प्रस्तुत किया है कि वैराग्य तथा अभ्यास के द्वारा मन को वशीभूत किया जा सकता है–

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।

गीता ६/३५

मन के विषय में जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि यह मन क्या है? पाश्चात्य विचारकों की दृष्टि में विचार, उद्वेग, चेतना तथा अनुभव मन के आधार स्थल है, किंतु भारतीय मनीषियों के अनुसार विचारों के आवेग, प्रकार तथा विचारों की दशा के आधार पर मन की गुण, मात्रा एवं दिशा का मान होता है।

पाश्चात्य विचारकों ने मन के नियंत्रण को महत्वपूर्ण नहीं माना है, किंतु भारतीय विचारक मन की वृत्तियों पर नियंत्रण आवश्यक मानते हैं। उनके अनुसार जिस समय पांचों ज्ञानेन्द्रियां मन के साथ स्थित हो जाती हैं तथा बुद्धि चेष्टा नहीं कर पाती है, वह अवस्था परम गति कहलाती है–

यदा पञ्चावविष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सद्।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमागतिम्।

कठोपनिषद् ३/१०

मन के भटकाव पर नियंत्रण उसके गुण एवं दोषों पर विचार के द्वारा होता है। सद् एवं असद् विचारों पर ध्यानाकर्षण करने से मन नियंत्रित होता है। हम मार्ग में जा रहे हैं, स्व गंतव्य स्थल पर पहुंचने के लिए विभिन्न प्रकार के विचार मन में चल रहे होते हैं, अचानक हमारे समक्ष एक दुर्घटना घटित हो जाती है। मन तत्काल उस घटित घटना से संबद्ध हो जाता है तथा पुराने विचारों का क्रम टूट जाता है तथा तत्काल मन अन्य दिशा की ओर उन्मुख हो जाता है। इस प्रकार से मन की गति स्थितियों के अनुसार परिवर्तित होती रहती है।

महर्षि पतंजलि के अनुसार 'वितर्क बाधने प्रतिपक्ष भावनम्' (पातंजल योग दर्शन, साधना पाद– ३३) अर्थात् वितर्कों से बाधित होने पर विरोधी विचारों की भावना को मन में लाने का प्रयास करना चाहिए। मन को परिवर्तित करने से मनः स्थिति परिवर्तित होता है, किंतु इस प्रकार के प्रयास में आत्मोन्नति के अवच्छिन्न संकल्प के द्वारा सफलता प्राप्त होती है। भारतीय मनीषियों के अनुसार उपभोगवादी विचारधारा में भोग भोगने की प्रवृत्ति शांत नहीं होती है, अपितु उसको भोगने की इच्छा और अधिक बलवती हो जाती है। भर्तृहरि के अनुसार हम विषयों का उपभोग नहीं करते हैं, अपितु विषय ही हमारा उपभोग करा लेते हैं। हम तप नहीं करते हैं, अपितु तप ही हमको संतप्त कर लेते हैं। हमने काल यापन नहीं किया, अपितु काल ने हमको ही अपना ग्रास बना लिया। हमारी तृष्णा समाप्त नहीं हुई, अपितु तृष्णा ने ही हमको जीर्ण कर दिया–

भोगा न मुक्ता वयमेव भुक्तास्तपो न तप्त वयमेव तप्ता। कालो न यातो वयमेव यातस्तृष्णा न जीर्णो वयमेवजीर्णाः।

मर्तृ हरि– वैराग्य शतक– १२

मन को नियंत्रित करने के लिए वासना

मन के भटकाव पर नियंत्रण उसके गुण एवं दोषों पर विचार के द्वारा होता है। सद् एवं असर विचारों पर ध्यानाकर्षण करने से मन नियंत्रित होता है। हम मार्ग में जा रहे हैं, स्व गंतव्य स्थल पर पहुंचने के लिए विभिन्न प्रकार के विचार मन में चल रहे होते हैं, अचानक हमारे समक्ष एक दुर्घटना घटित हो जाती है। मन तत्काल उस घटित घटना से संबद्ध हो जाता है तथा पुराने विचारों का क्रम टूट जाता है तथा तत्काल मन अन्य दिशा की ओर उन्मुख हो जाता है। इस प्रकार से मन की गति स्थितियों के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। महर्षि पतंजलि के अनुसार 'वितर्क बाधने प्रतिपक्ष भावनम्' (पातंजल योग दर्शन, साधना पाद- 33) अर्थात् वितर्कों से बाधित होने पर विरोधी विचारों की भावना को मन में लाने का प्रयास करना चाहिए। मन को परिवर्तित करने से मनः स्थिति परिवर्तित होता है, किंतु इस प्रकार के प्रयास में आत्मोन्नति के आवच्छिन्न संकल्प के द्वारा सफलता प्राप्त होती है। भारतीय मनीषियों के अनुसार उपभोगवादी विचारधारा में भोग भोगने की प्रवृत्ति शांत नहीं होती है, अपितु उसको भोगने की इच्छा और अधिक बलवती हो जाती है। भर्तृहरि के अनुसार हम विषयों का उपभोग नहीं करते हैं, अपितु विषय ही हमारा उपभोग करा लेते हैं। हम तप नहीं करते हैं, अपितु तप ही हमको संतप्त कर लेते हैं। हमने काल यापन नहीं किया, अपितु काल ने हमको ही अपना ग्रास बना लिया। हमारी तृष्णा समाप्त नहीं हुई, अपितु तृष्णा ने ही हमको जीर्ण कर दिया- भोगा न मुक्ता वयमेव भुक्तास्तपो न तप्त वयमेव तप्ता। कालो न यातो वयमेव यातस्तृष्णा न जीर्णो वयमेवजीर्णाः। मर्तृ हरि- वैराग्य शतक- 12, मन को नियंत्रित करने के लिए वासना का नाश आवश्यक है। वासना के क्षय का मार्ग वासना के ज्ञान के द्वारा सम्भव होता है। वासना वास्तव में बाह्य विषय में उत्पन्न की हुई हमारी स्वयं की विचार प्रक्रिया होती है।

का नाश आवश्यक है। वासना के क्षय का मार्ग वासना के ज्ञान के द्वारा सम्भव होता है। वासना वास्तव में बाह्य विषय में उत्पन्न की हुई हमारी स्वयं की विचार प्रक्रिया होती है। यह भौतिक विषयों द्वारा उत्पन्न नहीं होती है, अपितु विषयों में वासना का उदय हमारे द्वारा ही होता है। वासना जब तक विनष्ट नहीं होती है, तब तक मनुष्यों को व्याकुल करती रहती है।

हमारी इंद्रियों का निर्माण इस प्रकार से हुआ है कि इंद्रियां वस्तु के यथार्थ का दर्शन करने के स्थान पर हमारे द्वारा प्रक्षिप्त रूप का ही दर्शन कर पाती है। योग दर्शन में इसको वृत्ति सारूप्य कहा गया है। वासना का संसार हमारे द्वारा ही निर्मित होता है, अतएव वासना से मुक्ति भी हमारे द्वारा ही सम्भव होती है। वासना की उत्पत्ति का ज्ञान हो जाने पर उससे मुक्ति का उपाय भी प्राप्त किया जा सकता है।

जिस प्रकार से स्वप्नावस्था में जागृत मन के शांत हो जाने पर शयन करते समय अज्ञात मन अथवा उप चेतन के संस्कार उसकी वासनाएं, उसके विचार प्रत्यक्ष होने लगते हैं, उसी प्रकार से ध्यानावस्था में उपचेतन के संस्कार भी प्रगट होने लगते हैं। इसी को मन की चंचलता कहते हैं। प्रायः यह देखा जाता है कि ईश्वर का चिंतन अथवा मनन करने के लिए मन को एकाग्र अथवा शांत करने का प्रयास करते ही मन में विभिन्न प्रकार के विचार उत्पन्न होने लगते हैं। मन अकस्मात् ही ईश्वर के ध्यान में लगने के स्थान पर कहीं कहीं दूर विचरण करने लगता है। मन को नियंत्रित करने के लिए वासनाओं पर नियंत्रण आवश्यक होता है।

ध्यान के द्वारा मन की चंचलता तथा वासनाओं का उन्मूलन दो उपायों से सम्भव हो सकता है– प्रथम– मन में उत्पन्न होने वाले भावों के प्रति साक्षी भाव रखना तथा द्वितीय जप के द्वारा मन को परमात्मा में लीन कर देना। अमर आत्मा शरीर से भिन्न होने के कारण साक्षी भाव से रह सकता है।

शरीर का साक्षी होने के समान ही यह स्व विचारों को तटस्थ भाव से देख सकता है। व्यर्थ में स्वयं मन ही मन कुंठाओं से ग्रस्त रहना अथवा स्वयं को तथा अन्य व्यक्ति को उलाहना देते रहना मानसिक क्लिक्षृता का कारण होता है तथा साक्षी भाव से मन पर विजय प्राप्त करने से मन को शांति प्राप्त होती है।

जप के द्वारा मन के भटकाव से तथा वासनाओं से मुक्ति प्राप्त होती है। मन अकर्मण्य नहीं रह सकता है। जप के द्वारा मन एकाग्र होता है तथा मन एक स्थानपर नियंत्रित हो पाता है। परमात्मा के स्मरण से चित्त शांत होता है। चित्त की शांति से मन एकाग्र होता है। महर्षि पतंजलि के अनुसार 'तज्जपः तदर्थ भावनम्' पातंजल योग दर्शनम्– समाधि पाद–२८/ अर्थात् परमात्मा के प्रति समर्पित होने का उपाय है, उसके ओ३म् नाम का जाप करना।

परमात्मा के प्रति इस प्रकार के समर्पण से मन एकाग्र होता है। मन की शांति ही सुख का मूलाधार है। नियंत्रित मन से समग्र शांति प्राप्त होती है। अतएव परमात्मा से मन को नियंत्रित करने की प्रार्थना करनी चाहिए तथा मन को यथा सम्भव शुभ संकल्पों से सम्पन्न बनाने का प्रयास करना चाहिए। वेद में प्रार्थना की गयी है कि जिस प्रकार से कुशल सारथी लगाम के द्वारा रथ के अश्वों को सम्यक रूप से नियंत्रित करता है तथा वेगवान अश्वों को रस्सियों के द्वारा स्व नियंत्रण में रखता है, उसी प्रकार से मन मनुष्यादि प्राणियों को शीघ्रमेव इतस्ततः भ्रमित करता रहता है। इस प्रकार से हृदय में स्थित विषयादि में प्रेरक वृद्धादि अवस्था रहित तथा अत्यधिक वेगवान् मेरा मन शुभ संकल्पों से युक्त हो।

सुषारथिश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयते डमीशुभिर्वाजिन इव।

हृत्यतिष्ठं यादजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।

यजुर्वेद ३४/४

पं इन्द्र विद्यावाचस्पति : संक्षिप्त जीवनी

पं इन्द्र विद्यावाचस्पति

पुण्यतिथि : 23 अगस्त पर शत्-शत् नमन

दुनिया उसको ही पूजती है जो अपने 'स्व' को सर्व में मिला देता है। आजानुबाहु पं. इन्द्रजी ने अपने शैक्षिक, साहित्यिक, राजनैतिक एवं पत्रकारिता के अमोघ एवं बहुमूल्य सामर्थ्य से राष्ट्रीय अस्मिता को अक्षुण्य बनाए रखने में अविस्मरणीय योगदान दिया है। जीवन में अनेक विलोभनीय प्रलोभन आए पर उन सबको ठुकराकर वे राष्ट्रनिर्माण के कार्य में ही लगे रहे। वे देश के महान विश्वकर्मा थे। राष्ट्रीय साहित्यकारों में उनका स्थान महत्वपूर्ण है।

जन्म : पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति के पिता श्री महात्मा मुंशीराम जी थे। उनकी माता का नाम शिव देवी जी था। पं. इंद्र जी का जन्म पंजाब प्रांत के जालंधर शहर में ९ नवम्बर १८८९ को हुआ। वैसे उनके पितामह आदि जालंधर शहर से २५-३० मील के फासले पर तलवन ग्राम में निवास करते थे। आप भाई-बहिनों में सबसे छोटे थे। सबसे बड़ी बहिन वेदकुमारी, दूसरी बहिन अमृतकला, दो वर्ष बड़े भाई हरिश्चन्द्र व आपका नाम इंद्रचन्द्र रखा गया। सन् १८९१ में उनकी माता जी का देहांत हो गया। बालक इंद्रचन्द्र बचपन से ही शरीर से दुर्बल थे। माताजी के निधन के बाद उनकी पत्नी श्रीमती जमुना देवी जी ने बच्चों को देखभाल का कार्य सम्भाल लिया। बालक इंद्रका उन्होंने बहुत कष्ट उठाकर, मातृभाव से पालन किया।

संस्कार एवं शिक्षा-दीक्षा : इंद्र जी के पितामह नानक चन्द्र जी शहर कोतवाल के पद से सेवानिवृत्त हुए थे। अत्यंत निर्भीक एक धार्मिक व्यक्ति थे। इंद्र जी के पिता महात्मा मुंशीराम ऋषि तुल्य जीवन जीने वाले, निष्ठावान शिक्षा-शास्त्री, महान समाज सुधारक व तेजस्वी राष्ट्रीय नेता के रूप में देशभर में विख्यात थे। वकीली पेशे व ऐशोआराम को लात मारकर उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन समाज एवं राष्ट्र की सेवा में अर्पित कर दिया था। इंद्र जी के जीवन पर उनके व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।

इन्द्र जी के जन्म के समय मुंशीराम जी कट्टर आर्यसमाजी बन चुके थे एवं उस समय जालंधर आर्यसमाज के प्रधान भी थे। जालंधर में उनकी अपनी भव्य कोठी थी। सवारी के लिए उस समय के अनुसार उनके पास दो-दो बग्धियां थीं। कोठी के सामने सुंदर बगीचा था। जिसके चबूतरे पर नित्य सायंकाल कुर्सियां बिछायी जाती थीं कचहरी से लौटने के बाद शहर के प्रमुख व्यक्ति आते और राजनीति व धर्म पर चर्चा होती थी।

इन्द्र जी की प्रारंभिक शिक्षा 'द्वाबी हाई स्कूल' हुई। जब वे छठी कक्षा में पढ़ रहे ते तो पिताजी ने दोनों भाइयों को 'गुरुकुल गुजरांवाला' में भेज दिया। इसी समय मुंशीराम जी ने वकालत छोड़ दी और एक आदर्श (सत्यार्थप्रकाश के नियमानुसार) गुरुकुल की स्थापना का निश्चय किया। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि गुरुकुल स्थापना के लिए आवश्यक ३० हजार रुपये जमा किए बिना घर में पैर नहीं रखूंगा।

४ मार्च १९०२ को हरिद्वार में, गंगा की धारा से डेढ़ मील दूरी पर हिमालय की उपत्यका शिवालिक पहाड़ की तलहटी में कण्टकाकीर्ण अरण्य से आनेष्ठित कांगड़ी ग्राम की दो बीधा जमीन पर गुरुकुल कांगड़ी की प्रारंभिक झोंपड़ियों का निर्माण हुआ। महात्मा जी ने अपने दोनों पुत्रों व अन्य ब्रह्मचारियों के साथ हरिद्वार के लिए प्रस्थान किया। गुरुकुल कांगड़ी में प्रवेश के साथ ही इंद्र जी का ऋषि-संतान के समान गुरुकुलीय जीवन आरम्भ हो गया और पिता-पुत्र का संबंध आचार्य एवं अंत:वासी के रूप में परिवर्तित हो गया। सन् १९१२ में

पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति के पिता श्री महात्मा मुंशीराम जी थे। उनकी माता का नाम शिव देवी जी था। पं. इंद्र जी का जन्म पंजाब प्रांत के जालंधर शहर में 9 नवम्बर 1889 को हुआ। वैसे उनके पितामह आदि जालंधर शहर से 25-30 मील के फासले पर तलवन ग्राम में निवास करते थे। आप भाई-बहिनों में सबसे छोटे थे। सबसे बड़ी बहिन वेदकुमारी, दूसरी बहिन अमृतकला, दो वर्ष बड़े भाई हरिश्चन्द्र व आपका नाम इंद्रचन्द्र रखा गया। सन् 1891 में उनकी माता जी का देहांत हो गया। बालक इंद्रचन्द्र बचपन से ही शरीर से दुर्बल थे। माताजी के निधन के बाद उनकी बाई श्रीमती जमुना देवी जी ने बच्चों को देखभाल का कार्य सम्भाल लिया। बालक इंद्रका उन्होंने बहुत कष्ट उठाकर, मातृभाव से पालन किया। संस्कार एवं शिक्षा-दीक्षा : इंद्र जी के पितामह नानक चन्द्र जी शहर कोतवाल के पद से सेवानिवृत्त हुए थे। अत्यंत निर्भीक एक धार्मिक व्यक्ति थे। इंद्र जी के पिता महात्मा मुंशीराम ऋषि तुल्य जीवन जीने वाले, निष्ठावान शिक्षा-शास्त्री, महान समाज सुधारक व तेजस्वी राष्ट्रीय नेता के रूप में देशभर में विख्यात थे। वकील पेशे व ऐशोआराम को लात मारकर उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन समाज एवं राष्ट्र की सेवा में अर्पित कर दिया था।

उन्होंने गुरुकुल के कांगड़ी के प्रथम स्नातकों के साथ वेदालंकार की उपाधि प्राप्त की। गुरुकुल में सब विषयों की शिक्षा मातृभाषा हिंदी में ही दी जाती थी। उन्होंने संस्कृत के अतिरिक्त आंग्लभाषा (अंग्रेजी), इतिहास, अर्थशास्त्र, गणित, विज्ञान आदि आधुनिक विषयों में भी पूरी योग्यता प्राप्त की। गुरुकुल में रहते हुए उनकी रुचि पत्रकारिता एवं लेखन में विशेष थी। कुछ समय उन्होंने 'सद्धर्म-प्रचारक' का संपादन किया। उस समय उन्होंने कुछ कविताएं लिखी। उनमें से एक की प्रथम पंक्तियां हैं-

हे मातृभूमि तेरे चरणोंमें सिर नवाऊं।
मैं भक्तिभेंट अपनी तेरी शरण में लाऊं।।
तेरे ही काम आऊं, तेरा ही मंत्र गाऊं।।
मन और देह तुझ पर, बलिदान में चढ़ाऊं।।

इन राष्ट्रीय भावनाओं से लबालब युवक इन्द्र ने संसार की कर्मभूमि में प्रवेश किया। उन्होंने छात्रावास में ही राष्ट्र के लिए सर्वस्व बलिदान करने का निश्चय कर लिया था। उन्होंने अपनी डायरी में लिखा था- 'मेरी मातृभूमि को मेरी आवश्यकता है। आर्यों की जन्मभूमि आर्यावर्त को उसी ऊंचे स्थानपर पहुंचाना है जिस पर अन्य सभ्य देश पहुंच गए हैं।

धर्म, जाति व प्रांतीयता के भेदभावों को मिटाकर, भारतीयों में सहिष्णुता, सर्वधर्म समभाव, उत्पन्न करना जरूरी है। देशबंधु ही धर्मबंधु हैं व देशशत्रु की धर्मशत्रु है।' स्नातक बनने के बाद आपने अपने आचार्य जी (महात्मा मुंशीराम जी) की आज्ञानुसार १९१४ से १९२२ में गुरुकुल में अध्यापन का कार्य किया। बीच में एक वर्ष देहली जाकर 'विजय' पत्र का सम्पादन भी किया।

विवाह का गृहस्थ जीवन : स्नातक बनने के बाद उन्होंने निश्चय किया था कि वे आजन्म ब्रह्मचारी रहकर देशसेवा करेंगे। परंतु घर की कुछ परिस्थितियों के सामने उन्हें नतमस्तक हो अपना निश्चय बदलना पड़ा। बड़े भाई हरिश्चंद्र जी स्वभाव से ही तेजस्वी, मेधावी एवं शौकीन तबियत के थे। उनका व्यक्तित्व भी आकर्षक था। हिंदी, संस्कृत, अंग्रेजी में वे धाराप्रवाह व्याख्यान दे सकते थे। 'विजय' से संपादन के लिए वे देहली गए। इस समय तक उनका विवाह 'सुभद्रा कुमारी जी' से हो चुका था।

यहीं वे प्रसिद्ध क्रांतिकारी राजा महेंद्र प्रताप सिंह के संपर्क में आए और पिताजी को केवल सूचना देकर उनके सात विदेश चले गए। पत्नी व नवजात शिशु रोहित यही रह गए। इस समय इंद्र जी के सामने कर्त्तव्यों की भी समस्याएं थीं। भाभी व शिशु की देखभाल, अत्यंत वृद्धा तायी जी (जिनकी आंखों की रोशनी चली गयी थी) की सुचारु रूप से देखभाल व अपने पूज्य पिताजी की सेवा, इन सब कर्त्तव्यों का निर्वाह करने के लिए एक साथी की आवश्यकता थी।

गुरुकुल कांगड़ी के ही संस्कृत के अध्यापक श्री विष्णुमित्र शर्मा की पुत्री 'विद्यावती' से उनका विवाह सन् १९१५ में सम्पन्न हो गया। वे इस समय गुरुकुल में अध्यापन कर रहे थे। १९१७ में उनकी प्रथम संतान पुत्र का जन्म हुआ जिसका नाम 'जयंत' रखा गया। १२ अप्रैल सन् १९१७ में महात्मा मुंशीराम जी ने संन्यास ग्रहण किया और गुरुकुल का आचार्य पद छोड़कर देहली आकर देश की सक्रिय राजनीति में प्रवेश किया। थोड़े समय में ही देहली कांग्रेस के सर्वेसर्वा बनकर, देहली के जनमानस के सर्वसम्मत नेता बन गए। उस समय पं. इंद्र जी स्वामी जी के दायें, बायें सहायक के रूप में उपस्थित रहते थे।

पं, इन्द्र जी का जीवन नई-नई परीक्षाआं के गुजरता हुआ आगे बढ़ता रहा। गुरुकुल, आर्यसमाज, राष्ट्र व साहित्य, सबके प्रति अपना योगदान देते रहे। २४ अप्रैल १९२३ में 'अर्जुन' का प्रथम अंक प्रकाशित हुआ।' अर्जुनस्य प्रतिज्ञे हे, नदैन्यं न पलायनम्' के उद्घोष के साथ, संघर्षों से जूझता हुआ निरंतर आगे बढ़ता चला।

यह देहली से निकलने वाला पहला समाचार पत्र था। स्पष्टवादी, निर्भीक, राष्ट्रवादी पत्रकारिता के चलते 'अर्जुन' अंग्रेजी सरकार की आंखों की किरकिरी बना रहा। उसे कई बार सरकारी तंत्र के प्रहार झेलने पड़े।

१७ जनवरी १९४६ को 'वीर अर्जुन' की रजत जयंती बड़े धूमधाम से मनाई गई। अब तक देहली में कई अन्य दैनिक समाचार पत्र हिंदी में निकलने लगे थे। ये सब बड़े-बड़े पूंजीपतियों के व्यवसायिक संस्थान थे। उनके साथ कड़ी प्रतिस्पर्धा में 'वीर अर्जुन' डगमगा गया। इससे उबरने के लिए 'श्रद्धानंद पब्लिकेशन' के नाम से ट्रस्ट की स्थापना हुई।

पं. इन्द्र जी का स्वास्थ्य निरंतर खराब रहने लगा था। सन् १९५२ में उन्होंने 'श्रद्धानंद पब्लिकेशन' के डायरेक्टर पद से भी त्यागपत्र दे दिया। पं. इंद्र जी के दो स्तंभ 'गांडीव के तीर' जो राजनीतिक कटाक्ष होते व 'वीणा की झंकार' जिसमें सामाजिक विसंगतियों पर मीठे प्रहार होते, अत्यंत लोकप्रिय थे। इसके बंद होते ही 'वीर अर्जुन' की लोकप्रियता कम हो गयी और अंत में बंद करना पड़ा।

सन् १९५१, ७ अक्टूबर को अर्जुन प्रेस का अपना निवास छोड़कर वे जवाहर नगर में अपने नए मकान 'चन्द्रलोक' में आ गए थे। सन् १९४४ में पं. इन्द्र जी की गुरुकुल कांगड़ी के मुख्याधिष्ठाता (कुलपति) चुने गए थे। तब से निरंतर वहां की अवैतनिक सेवा में लगे थे। सन् १९५२ में वे राज्यसभा के सदस्य मनोनीय किए गए। सन् ४३ से ४८ तक आर्य प्रतिनिधि सभा के उपप्रधान व सार्वदेशिक सभा के मंत्री व १९४४ में हिंदी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष चुने गए।

'चन्द्रलोक' में आने के बाद इसी वर्ष घर में पांव फिसलने से पं. जी के कूल्हे की हड्डी टूट गई और उन्हें डा. सेन के नर्सिंग होम में दो महीने बिताने गड़े। वहां हड्डी विशेषज्ञ डा. खेड़ा का उपचार आरंभ हुआ। डा. खेड़ा उनके घुटने में छेद करके 'वेट' लटकाना चाहते थे। फेफड़ों के अत्यंत दुर्बल होने के कारण डा. उन्हें बेहोश करने से हिचक रहे थे। उनकी परेशानी का कारण जानने पर इंद्र जी ने मुस्करा कर कहा 'बस इतनी सी बात है आप मेरे चेहरे पर रुमाल डाल दीजिए और नि:शंक होकर छेद कीजिए।' बिजली का बर्मा चलाकर छेद कर दिया गया। पंडित जी के मुंह से उफ्फ

तक नहीं निकला। उनकी असाधारण सहनशक्ति व दृढ़ता देखकर डाक्टर आश्चर्यचकित थे। आंतरिक शक्ति, धैर्य एवं दृढ़ता उनके जीवन का अभिन्न अंग था।

इन दिनों राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू की ओर से मुगल गार्डन के छंटवा फूलों का गुलदस्ता एक दिन के अंतराल में आता था। राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू अत्यंत सरल व्यक्ति थे व अपने सहयोगियों को सदा स्मरण रखते थे। पं. इंद्र जी के प्रति उनका विशेष प्रेम था। उनके अतिरिक्त राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन, जुगल किशोर बिड़ला, उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्री प्रकाश जी आदि राष्ट्रीय नेता उन्हें मिलने आते रहे।

धीरे-धीरे उनकी बाहरी गतिविधियां संकुचित होने लगीं पर गुरुकुल के कुलपति का कार्य सम्हालते रहे। १३ अप्रैल १९६० को गुरुकुल कांगड़ी का वार्षिक समारोह एवं हीरक जयंती धूमधाम से मनाई गई। दीक्षांत समारोह में प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू मुख्य अतिथि के रूप में सम्मिलित हुए। २४ जुलाई को कुलवासियों की ओर से भावभीनी विदाई दी गयी। इस पर पं. इंद्र जी ने कहा- गुरुकुल तो मेरी आत्मा है इससे विदाई कैसी?

३ अगस्त को वे आर्य प्रतिनिधि सभा में सम्मिलित हुए। ६ अगस्त को अपने संस्कृत ग्रंथ 'भारतैसिह्यम्' का तीसवां अध्याय पूरा किया। २२ अगस्त को उनकी तबियत खराब हुई और उन्हें फिर सेन नर्सिंग होम ले जाना पड़ा। २३ अगस्त १९६० सायं ६-७ के मध्य उनके प्राण पखेरू कायष्टि से सदा-सदा के लिए उड़कर शून्य में विलीन हो गए।

राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू, प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू व अन्य प्रमुख नेताओं की ओर से श्रद्धासुमन अर्पित किए गए। आकाशवाणी ने भी यह दु:खद समाचार प्रसारित किया 'राष्ट्रीय साहित्यकार एवं पत्रकार, स्वतंत्रता सेनानी पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति का ७१ वर्ष की आयु में अल्पकालीन बीमारी के बाद देहावसान हो गया।'

यह समाचार जिसने भी सुना स्तब्ध रह गया। गुरुकुल कांगड़ी पर तो जैसे वज्रपात ही हो गया। वहां से बसों से भरकर विद्यार्थी एवं शिक्षक अपने महान नेता को श्रद्धांजलि देने देहली पहुंच गए। देहली ने अपने सर्वमान्य नेता को खो दिया था। अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने श्रद्धांजलि अंक निकाले। साप्ताहिक हिन्दुस्तान में प्रसिद्ध साहित्यकार श्री जगन्नाथ मिश्र ने लेख 'अब न वे हैं न वैसे' में पं. इन्द्र जी के बहुमुखी व्यक्तित्व की अनिर्वचनीयता पर टिप्पणी करते हुए लिखा- 'जिस प्रकार तलहटी में खड़े होकर किसी विशालकाय पर्वत का सर्वांग चित्र मानस-पटल पर नहीं उतारा जा सकता, उसी प्रकार इन्द्र जी के बहुमुखी व्यक्तित्व का पूरा मूल्यांकन किसी एक व्यक्ति के सामर्थ्य की बात नहीं है। हां, इतना अवश्य है कि हरितिका-मंडित व जल संकुल पर्वत के एक पक्ष को देखकर उसके सारे मांगलिक अस्तित्व का अनुमान किया जा सकता है।'

श्री बनारसी दास चतुर्वेदी के शब्दों में- 'स्व. पं. इन्द्र जी विद्यावाचस्पति के देहावसान के साथ उत्तर भारत के सांस्कृतिक एवं सामाजिक इतिहास का एक भव्य अध्याय समाप्त हो गया। उनका चरित्र आधुनिक युग के एक उज्ज्वलतम प्रकाशस्तम्भ के समान था। वे प्रथम श्रेणी के सम्पादक, लेखक एवं वक्ता थे। हिंदी पत्रकारिता को उनकी देन अत्यंत मूल्यवान है।'

OO

गुरुकुल कांगड़ी के ही संस्कृत के अध्यापक श्री विष्णुमित्र शर्मा की पुत्री 'विद्यावती' से उनका विवाह सन् 1915 में सम्पन्न हो गया। वे इस समय गुरुकुल में अध्यापन कर रहे थे। 1917 में उनकी प्रथम संतान पुत्र का जन्म हुआ जिसका नाम 'जयंत' रखा गया। 12 अप्रैल सन् 1917 में महात्मा मुंशीराम जी ने संन्यास ग्रहण किया और गुरुकुल का आचार्य पद छोड़कर देहली आकर देश की सक्रिय राजनीति में प्रवेश किया। थोड़े समय में ही देहली कांग्रेस के सर्वेसर्वा बनकर, देहली के जनमानस के सर्वसम्मत नेता बन गए। उस समय पं. इंद्र जी स्वामी जी के दायें, बायें सहायक के रूप में उपस्थित रहते थे। पं. इन्द्र जी का जीवन नई-नई परीक्षाआं के गुजरता हुआ आगे बढ़ता रहा। गुरुकुल, आर्यसमाज, राष्ट्र व साहित्य, सबके प्रति अपना योगदान देते रहे। 24 अप्रैल 1923 में 'अर्जुन' का प्रथम अंक प्रकाशित हुआ।' अर्जुनस्य प्रतिज्ञे हे, नदैन्यं न पलायनम्' के उद्घोष के साथ, संघर्षों से जूझता हुआ निरंतर आगे बढ़ता चला। यह देहली से निकलने वाला पहला समाचार पत्र था। स्पष्टवादी, निर्भीक, राष्ट्रवादी पत्रकारिता के चलते 'अर्जुन' अंग्रेजी सरकार की आंखों की किरकिरी बना रहा। उसे कई बार सरकारी तंत्र के प्रहार झेलने पड़े। 17 जनवरी 1946 को 'वीर अर्जुन' की रजत जयंती बड़े धूमधाम से मनाई गई। अब तक देहली में कई अन्य दैनिक समाचार पत्र हिंदी में निकलने लगे थे। ये सब बड़े-बड़े पूंजीपतियों के व्यवसायिक संस्थान थे। उनके साथ कड़ी प्रतिस्पर्धा में 'वीर अर्जुन' डगमगा गया। इससे उबरने के लिए 'श्रद्धानंद पब्लिकेशन' के नाम से ट्रस्ट की स्थापना हुई। पं. इन्द्र जी का स्वास्थ्य निरंतर खराब रहने लगा था। सन् 1952 में उन्होंने 'श्रद्धानंद पब्लिकेशन' के डायरेक्टर पद से भी त्यागपत्र दे दिया। पं. इंद्र जी के दो स्तंभ 'गांडीव के तीर' जो राजनीतिक कटाक्ष होते व 'वीणा की झंकार' जिसमें सामाजिक विसंगतियों पर मीठे प्रहार होते, अत्यंत लोकप्रिय थे। इसके बंद होते ही 'वीर अर्जुन' की लोकप्रियता कम हो गयी और अंत में बंद करना पड़ा।

वैदिक विज्ञान तथा आधुनिक विज्ञान
एक तुलनात्मक अध्ययन

कृपाल सिंह वर्मा, कंकरखेड़ा, मेरठ

धन्य हैं वे महर्षि दयानंद जिन्होंने सर्वप्रथम वेदों के वैज्ञानिक भाष्य प्रस्तुत किए। ये ही भविष्य में भारतवर्ष की सर्वोच्चता का आधार बनेंगे। 'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना प्रत्येक आर्य का परम धर्म है।'

विभिन्न वैज्ञानिकों के मन में विभिन्न कालों में टुकड़ों के रूपमें वैज्ञानिक तथ्यों का प्रकाश हुआ है। उन सबका संग्रह ही आधुनिक विज्ञान है। परम पिता परमेश्वर ने सृष्टि के प्रारंभिक काल में ऋषियों के मन में वेद विज्ञान का प्रकाश समग्र रूप से किया। वेद के एक-एक शब्द की रचना बुद्धिपूर्वक है।

आधुनिक ज्ञान में Element के मूल कण को Atom कहते हैं। परमाणु कहते हैं। तत्वों के परमाणु अलग-अलग प्रकार के होते हैं। परमाणु Electron, Proton तथा Neutron से मिलकर बनते हैं। इनकी संख्या प्रत्येक तत्व के परमाणु में अलग-अलग होती है।

आधुनिक विज्ञान में Elements, Compounds और Mixture को Matter अर्थात् पदार्थ कहते हैं तथा इससे आगे Heat, Light तथा Electricity को Energy कहते हैं। Matter को, पदार्थ को, Energy में बदल सकते हैं।

वैदिक विज्ञान में समस्त पदार्थों को पांच भागों में बांटा गया है। इन्हें पांच तत्व कहते हैं। वैदिक विज्ञान के पांच तत्व आधुनिक विज्ञान के Element नहीं है। ये पांच तत्व हैं- १. पृथ्वी २. जल ३. अग्नि ४. वायु ५. आकाश।

आधुनिक विज्ञान के हिसाब से पृथ्वी तथा जल Matter के अंतर्गत आते हैं तथा अग्नि तथा वायु Energy के अंतर्गत आते हैं। परंतु वैदिक विज्ञान ने अग्नि तथा वायु आदि को भी पदार्थ माना है। क्योंकि इनकी रचना भी परमाणुओं (वैदिक परमाणु) के संयोग से होती है। वायु तत्व का अर्थ गैस नहीं है। वायु तत्व होता है विद्युत तथा प्राण। वायु तत्व का सबसे छोटा कण स्पर्शतन्मात्रा होता है। अर्थात वह छोटे से छोटा कण जिमें स्पर्श का गुण विद्यमान हो। एक स्पर्शतन्मात्रा ६०X२=१२० वैदिक परमाणुओं से मिलकर बनता है।

अग्नि के सबसे छोटे कण को रूपन्मात्रा कहते हैं। जो ६०X३=१८० वैदिक परमाणुओं से मिलकर बनता है। सृष्टि की रचना क्रम में सर्वप्रथम आकाश तत्व का निर्माण होता है। इसके पश्चात वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी तत्व का निर्माण होता है। प्रलय अवस्था में पृथ्वी जल तत्व में बदल जाता है। जल अग्नि में, अग्नि वायु में, वायु आकाश में बदल जाती है।

अर्थात पृथ्वी तथा जल जिन्हें आधुनिक विज्ञान में मैटर कहते हैं, वे अग्नि, वायु तता आकाश में बदल जाते हैं, जिन्हें आधुनिक विज्ञान में एनर्जी कहते हैं। इसका अर्थ है कि प्रलय काल में मेटर अर्थात पदार्थ एनर्जी अर्थात ऊर्जा में बदल जाता है। आधुनिक विज्ञान कहता है कि मेटर एनर्जी में बदल जाता है।

अमेरिकी वैज्ञानिक आइंस्टीन ने इसका एक सूत्र भी बनाया जो बहुत प्रसिद्ध हुआ। $Y=mc^2$, लेकिन यह तथ्य तो वेद में आदिकाल से ही मौजूद है। आधुनिक विज्ञान की शैली में वैदिक विज्ञान की बात इस प्रकार कह सकते हैं- 'सृष्टि निर्माण काल में ऊर्जा पदार्थ में बदल जाती है तथा प्रलय काल में पदार्थ ऊर्जा में बदल जाता है।' वैदिक विज्ञान के अनुसार सृष्टि निर्माण काल में पहले ऊर्जा तथा ऊर्जा से पदार्थ का निर्माण होता है। पता नहीं आधुनिक विज्ञान इस बात को मानता है या नहीं। यदि नहीं मानता हो तो भविष्य में अवश्य मानेगा।

○○

वैदिक विज्ञान में समस्त पदार्थों को पांच भागों में बांटा गया है। इन्हें पांच तत्व कहते हैं। वैदिक विज्ञान के पांच तत्व आधुनिक विज्ञान के Element नहीं है। ये पांच तत्व हैं- 1. पृथ्वी 2. जल 3. अग्नि 4. वायु 5. आकाश। आधुनिक विज्ञान के हिसाब से पृथ्वी तथा जल Matter के अंतर्गत आते हैं तथा अग्नि तथा वायु Energy के अंतर्गत आते हैं। परंतु वैदिक विज्ञान ने अग्नि तथा वायु आदि को भी पदार्थ माना है। क्योंकि इनकी रचना भी परमाणुओं (वैदिक परमाणु) के संयोग से होती है। वायु तत्व का अर्थ गैस नहीं है। वायु तत्व होता है विद्युत तथा प्राण। वायु तत्व का सबसे छोटा कण स्पर्शतन्मात्रा होता है। अर्थात वह छोटे से छोटा कण जिमें स्पर्श का गुण विद्यमान हो। एक स्पर्शतन्मात्रा 60X2=120 वैदिक परमाणुओं से मिलकर बनता है। अग्नि के सबसे छोटे कण को रूपन्मात्रा कहते हैं। जो 60X3=180 वैदिक परमाणुओं से मिलकर बनता है। सृष्टि की रचना क्रम में सर्वप्रथम आकाश तत्व का निर्माण होता है। इसके पश्चात वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी तत्व का निर्माण होता है। प्रलय अवस्था में पृथ्वी जल तत्व में बदल जाता है। जल अग्नि में, अग्नि वायु में, वायु आकाश में बदल जाती है।

आर्य समाज का षष्ठ नियम...

विजय बिहारी लाल माथुर

संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

संसार के उपकार का व्यापक उद्देश्य : आर्यसमाज का छठा नियम सुबोध शब्दों में अपनी व्याख्या, स्वयमेव करता हुआ सब पर आर्यसमाज के संस्थापक वेदोद्धारक, युगप्रवर्तक परिव्राजकाचार्य महर्षि दयानंद की असीम उदारता की अमिट छाप स्पष्ट लगाता है। जहां अन्य धर्माचार्यों, मठाधीशों और सम्प्रदाय संस्थापकों की दृष्टि उनके सम्प्रदाय अथवा उनके समाज के सीमित क्षेत्र से आगे देख ही नहीं सकी, वहां धन्य है महर्षि की उदारचेतना व्यापक दृष्टि जिसने न केवल आर्यसमाज, न केवल वैदिक धर्मावम्बी, न केवल भारतवासी, अपितु संसार के मानवमात्र को मानो अपनी स्नेहिल गोद में लेकर दुलारपूर्वक सारे संसार का उपकार करने का आदेश अपने अनुयायियों को दिया। वेदभक्त महर्षि ने वेद का संदेश 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' सारे विश्व को आर्य (श्रेष्ठ) बनाने के समान ही सारे संसार के उपकार करने का शुभ संदेश दिया तथा संसार के उपकार करने के आदेश को मुख्य उद्देश्य का असाधारण महत्व प्रदान किया।

उपकार के क्षेत्र में शारीरिक उन्नति : संसार के उपकार करने के आदेश को कोई भ्रांतिवश अस्पष्ट अति व्यापक समझ दिग्भ्रमित न हो जाए, इस दृष्टि से इसी नियम में स्पष्ट कर दिया कि संसार के उपकार करने से कौन-कौन से पक्ष कार्यक्षेत्र के अंतर्गत आते हैं, वे पक्ष है- संसार के निवासियों की (१) शारीरिक उन्नति करना, (२) उनकी आध्यात्मिक उन्नति करना तथा (३) उनकी सामाजिक उन्नति करना, यह तीन प्रकार की संसार के मानवमात्र की उन्नति करने का अभिप्राय है संसार का उपकार करना।

संसार भर के मानव मात्र की उपर्युक्त तीन प्रकार की उन्नति करने हेतु वांछित ज्ञान, योग्यता, क्षमता, इच्छा एवं समुचित साधन उन्नति का प्रयत्न करने वाले व्यक्ति में होना आवश्यक है, तभी वह इस महत् कार्य को सफलतापूर्वक सम्पन्न कर सकेगा। यह कार्य परोपकार की दृष्टि से किया जाना है अर्थात् अन्य व्यक्तियों का हित कल्याण बिना अपने नजी स्वार्थ के करना। मानवमात्र की शारीरिक उन्नति हेतु प्रयत्न वही व्यक्ति कर सकेगा जिसका स्वयं का शरीर हृष्ट-पुष्ट, निरोग, स्वस्थ एवं दीर्घायु हो, अत: जो भी व्यक्ति अन्यों की शारीरिक उन्नति का प्रयत्न करे, उसे पहले पात्रता ग्रहण करने हेतु स्वयं अपना शरीर उन्नत करना होगा। एक निर्बल, रोगी, दुश्चरित्र व्यक्ति से क्या आशा की जाए कि वह अन्यों के शरीर की उन्नति कर सकेगा। स्वयं के शरीर को इस सत्कर्म के योग्य बनाने के लिए व्यक्तियों को अपना आहार-विहार, सदाचरण एवं ब्रह्मचर्य, स्वस्थ रहने के नियमों का पालन, व्यायाम व यौगिक क्रियाओं द्वारा स्वस्थ व पुष्ट बनाना होगा। 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' शरीर ही सारे धर्म कार्य सम्पन्न करने का साधन है, शरीररहित आत्मा अकेली धर्म-कर्म में प्रवृत्त नहीं हो सकती। परंतु 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्य:' बलहीन शरीर वाली आत्मा सफलता नहीं प्राप्त कर सकती, अत: स्वयं के शरीर को सारे सात्विक साधनों से बलवान, निरोग व पुष्ट करना हर प्रकार से वांछित है। अपने शरीर को स्वस्थ एवं पुष्ट करने से कर्त्तव्य की पूर्णता नहीं समझनी चाहिए तथा सब व्यक्तियों के शरीर व स्वास्थ्य सुधार पर भी उतना ही ध्यान दिया जाना चाहिए। आर्यसमाज की ओर से अनेक स्थानों पर व्यायामशालाएं स्थापित कर, उपदेशों से भी आबाल वृद्ध सभी व्यक्तियों को स्वस्थ एवं पुष्ट शरीर रखने का जो संदेश दिया जा रहा है वह इसी नियम की पालना का प्रमाण है। निज के शरीर के पश्चात् परिवार के अन्य सदस्यों का, पड़ोसियों का, नगर निवासियों का एवं इसी क्षेत्र को अधिक से अधिक व्यापक बनाते रहकर सबकी शारीरिक उन्नति हेतु प्रयत्नशील रहना चाहिए।

दूसरा उपकार क्षेत्र- आत्मिक उन्नति : इस नियम में परोपकार की व्याख्या में जिस दूसरे क्षेत्र का निर्देश है वह है आत्मिक उन्नति। बलवान् पुष्ट शरीर एक बलवान पुष्ट थोड़े के समान है। बलवान् घोड़ा नियंत्रण में रहे तो रथ को गंतव्य स्थान तक ले जाएगा तथा अनियंत्रित घोड़े का बल, रथ, सारथी एवं सवार सभी को गहरे गर्त में गिरा देगा। पांच कर्मेन्द्रियों एव पांच ज्ञानेन्द्रियों के १० घोड़ों वाले रथ की लगाम, बुद्धिरूपी सारथी के हाथों में रहे तो आत्मारूपी सवार मोक्ष के लक्ष्य तक पहुंच सकता है।

आध्यात्मिक ज्ञान, बुद्धि का वह सामर्थ्य प्रदान करता है जिससे घोड़े नियंत्रण में रहें तथा शारीरिक बल का दुरुपयोग न होकर सदुपयोग हो। बल से निर्बलों को अभयदान एवं दुष्टों को न्यायोचित दंड मिले। समाज व देश में सुस्थिरता, निर्भय व्यवस्था स्थापित होकर भ्रष्टाचार, दुराचार व अराजकता का नाश होकर रामराज्य की स्थापना हो, यह सभी कार्य शारीरिक बल की प्रत्यक्ष का परोक्ष रूप से अपेक्षा रखते हैं। शारीरिक बल व्यक्ति एवं समाज के अभ्युदय की नींव है। परंतु शारीरिक बल भी जितना आवश्यक एवं हितकारी है, इस बात का नियंत्रण द्वारा सदुपयोग भी उतना ही आवश्यक व सर्वकल्याणकारी है तथा यह नियंत्रण आत्मिक बल की उन्नति से सम्भव है।

आत्मिक बल की उन्नति हेतु आस्तिकता एवं ब्रह्माण्ड की रचना, रक्षा एवं विनाश करने वाले सर्वव्यापक एवं सर्वशक्तिमान प्रभु में विश्वास जहां हमारी लघुता का अनुभव कराके हमारे अभिमान को दूर करेगी, उसी प्रभु की सर्वव्यापकता एवं न्यायप्रियता, उसका दंड देने के रुद्रस्वरूप की अनुभूति, हमें

मानव सामाजिक प्राणी है, समाज के संगठन के द्वारा व्यक्ति की निजी शक्ति एवं योग्यता, क्षमता कई गुना हो जाती है तथा सामाजिक संगठन के माध्यम से हम अपनी संस्कृति, साहित्य एवं वह सब कुछ जिस पर हमें गर्व है, उसको स्थिर रख सकते हैं, उसमें अभिवृद्धि एवं उसका उन्नयन कर सकते हैं, तथा आगामी पीढ़ी के लिए विरासत में उसे छोड़ सकते हैं। सामाजिक संगठन के द्वारा समाज में घुस आने वाले दोषों, त्रुटियों को निकालकर हम समाज की अवनति को दूर कर सकते हैं। शारीरिक उन्नति के लिए आर्यसमाज के तत्वावधान में स्थान-स्थान पर व्यायामशालाएं स्थापित करने के साथ आर्यवीर दलों, आर्यकुमार सभा एवं आर्ययुवक संघों की स्थापना तथा उनका कार्य यथेष्ट महत्वपूर्ण रहा है। यह सभी कार्य आर्यसमाज की ओर से, व्यक्तिगत रूप से यथा सामाजिक रूप से लाभकारी रहे हैं तथा वर्तमान में भी हैं। आत्मिक उन्नति की दिशा में आर्यसमाज ने सच्छी आस्तिकता एवं सही ईश्वरोपासना का प्रचार किया है। आत्मिक कल्याण की भावना से पुरुषार्थ चतुष्टय धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के प्रयत्न हेतु जन-जन में चेतना जाग्रत् की है तथा विशुद्ध वैदिक भारतीय संस्कृति के तत्वों का जनता में प्रचार कर वैदिक मान्यताओं को पुनः जीवित कर व्यक्ति एवं समष्टि की आत्मिक शक्ति विकसित करने की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

प्रत्येक देश, काल व स्थान में पाप करने से बचाएगी। परमपिता परमात्मा की सहाय की अनुभूति हमें निर्भय, संकट में भी धैर्यवान, कष्ट में भी न्याय एवं सत्य की रक्षार्थ दृढ़ तथा अपरिमित इच्छाशक्ति से सम्पन्न करेगी। आत्मिक शक्ति के धनी व्यक्ति क्या कुछ कर सकते हैं इसके स्पष्ट उदाहरण आदिगुरु शंकराचार्य, महर्षि दयानंद एवं महात्मा गांधी हैं। इस नियम का संदेश है कि हम अपनी व संसार के मानवमात्र की आध्यात्मिक शक्ति विकसित करने का प्रयोग करें।

उपकार का तीसरा क्षेत्र-सामाजिक उन्नति : संसार के उपकार का तीसरा क्षेत्र सामाजिक उन्नति करना है। मानव सामाजिक प्राणी है। समाज के संगठन के द्वारा व्यक्ति की निजी शक्ति एवं योग्यता, क्षमता कई गुना हो जाती है तथा सामाजिक संगठन के माध्यम से हम अपनी संस्कृति, साहित्य एवं वह सब कुछ जिस पर हमें गर्व है, उसको स्थिर रख सकते हैं, उसमें अभिवृद्धि एवं उसका उन्नयन कर सकते हैं, तथा आगामी पीढ़ी के लिए विरासत में उसे छोड़ सकते हैं। सामाजिक संगठन के द्वारा समाज में घुस आने वाले दोषों, त्रुटियों को निकालकर हम समाज की अवनति को दूर कर सकते हैं। इसी संदर्भ में यह विचार करना भी प्रासंगिक होगा कि महर्षि दयानंद द्वारा स्थापित आर्यसमाज ने इन तीनों क्षेत्रों में व्यावहारिक रूप से क्या किया है। शारीरिक उन्नति के लिए आर्यसमाज के तत्वावधान में स्थान-स्थान पर व्यायामशालाएं स्थापित करने के साथ आर्यवीर दलों, आर्यकुमार सभा एवं आर्ययुवक संघों की स्थापना तथा उनका कार्य यथेष्ट महत्वपूर्ण रहा है। यह सभी कार्य आर्यसमाज की ओर से, व्यक्तिगत रूप से यथा सामाजिक रूप से लाभकारी रहे हैं तथा वर्तमान में भी हैं।

आत्मिक उन्नति की दिशा में आर्यसमाज ने सच्छी आस्तिकता एवं सही ईश्वरोपासना का प्रचार किया है। आत्मिक कल्याण की भावना से पुरुषार्थ चतुष्टय धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के प्रयत्न हेतु जन-जन में चेतना जाग्रत् की है तथा विशुद्ध वैदिक भारतीय संस्कृति के तत्वों का जनता में प्रचार कर वैदिक मान्यताओं को पुनः जीवित कर व्यक्ति एवं समष्टि की आत्मिक शक्ति विकसित करने की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। सामाजिक क्षेत्र में आर्यसमाज का योगदान किसी भी अन्य सामाजिक संस्था से न केवल श्रेष्ठ ही रहा है अपितु अन्यों के लिए मार्ग प्रशस्तकारक एवं अनुकरणीय भी रहा है। महर्षि दयानंद के प्रादुर्भाव के समय भारतीय समा विशेषकर हिंदूसमाज कुरीतियों का पर्यारूप रह गया था। हमने अपनी जाति के प्राचीन वैदिक नाम आर्य को भुलाकर अपने को हिंदू कहना प्रारंभ किया। चारों वेद, छह शास्त्र, रामायण, महाभारत, प्रमाणिक उपनिषद्, गृह्यसूत्र, मनुस्मृति या अन्य किसी भी स्मृति या धार्मिक ग्रंथ में हिंदू शब्द नहीं पाया जाता।

यह पाया जाता है तो अरबी भाषा के लुगत (शब्दकोश) में जहां इसके अर्थ है काला, गुलाम, चोर व काफिर तथा यह हिंदू की उपाधि भारतीयों को मुस्लिम आक्रमणकारियों ने, अर्थात् विजेताओं ने पराजित जाति को दी। यह हमारी दुहरी पराजित मानसिकता है कि हम उसी काले, चोर, गुलाम व काफिर अर्थ वाले शब्द हिंदू से चिपके हुए हैं। अनेक सज्जन हिंदू शब्द के साथ खींचतान करके सिन्धु से अपभ्रंश हिंदू बता रहे हैं। मानो कि सिन्धु नदी पूरे राष्ट्र की द्योतक (प्रतीक) बन गई। विचित्र स्थिति यह भी है कि सिन्धु नदी का नाम, सिन्ध प्रांत का नाम, सिन्धी भाषा का नाम तो अपभ्रंश आज तक नहीं हुए परंतु सिन्धु नदी के नाम से जाति का नाम अपभ्रंश होकर हिंदू हो गया। क्या यह तर्क गले उतरने योग्य है? क्या यह सब बुद्धि से विचारणीय नहीं है?

वेदमंत्रों में अनेकबार आर्य शब्द आया। रामायण में माता सीता श्रीराम को हिंदूपुत्र नहीं कहती, आर्यपुत्र से संबोधन करती हैं। महाभारत में भी श्रीकृष्ण को अर्जुन आदि पाण्डव तथा अन्य भी एक-दूसरे को आर्य शब्द से संबोधित करते हैं।

महर्षि दयानंद जी आर्य जाति पर यह महान उपकार है कि उन्होंने जाति को भूले नाम का स्मरण कराया तथा याद दिलाया कि हम काले, चोर, गुलाम व काफिर नहीं हैं, हम ईश्वर के अमृतपुत्र श्रेष्ठ उपाधि से सम्पन्न आर्य हैं, हमारा धर्मग्रंथ वेद है तथा हमारा हमारा एकमात्र उपास्य देव निराकार ओ३म् है। महर्षि दयानंद ने अपने द्वारा स्थापित संगठन का नाम आर्यसमाज, श्रेष्ठ व्यक्तियों का समाज रखा तथा इस संगठन के सदस्यों को आर्य नाम से विभूषित एवं गौरवान्वित किया।

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस

अशोक कौशिक

अंधा चकाचौंध का मारा, क्या जाने इतिहास बेचारा। साक्षी है उसकी महिमा के, सूर्य-चन्द्र-भूगोल खगोल। कलम आज उनकी जय बोल।।

पुण्यतिथि : 18 अगस्त पर शत्-शत् नमन

गुलामी की बेड़ियों में जकड़े हुये भारत को आजाद कराने के लिये अनेक देशभक्तों ने अपने-अपने तरीकों से भारत को आजाद कराने की कोशिश की। किसी ने क्रान्ति के मार्ग को अपनाया तो किसी ने अहिंसा और शान्ति के मार्ग को, पर दोनों मार्गों के समर्थकों के संयुक्त प्रयासों से ही भारत की आजादी का मार्ग निर्धारित हुआ। भारत की आजादी के लिये संघर्ष करते हुये अनेक क्रान्तिकारी भारतीय शहीद हुये। ऐसे ही महान क्रान्तिकारी, भारतीय स्वतंत्रता सेनानी थे सुभाष चन्द्र बोस। एक ऐसा व्यक्तित्व जिसने अपने कार्यों से अंग्रेजी सरकार के छक्के छुड़ा दिये। इन्होंने अपने देश को आजाद कराने के लिये की गयी क्रान्तिकारी गतिविधियों से ब्रिटिश भारत सरकार को इतना ज्यादा आंतकित कर दिया कि वो बस इन्हें भारत से दूर रखने के बहाने खोजती रहती, फिर भी इन्होंने देश की आजादी के लिये देश के बाहर से ही संघर्ष जारी रखा और वो भारतीय इतिहास में पहले ऐसे स्वतंत्रता सेनानी हुये जिसने ब्रिटिश भारत सरकार के खिलाफ देश से बाहर रहते हुये सेना संगठित की और सरकार को सीधे युद्ध की चुनौती दी और युद्ध किया।

आजाद हिन्द फौज के सूत्राधार नेताजी सुभाष चन्द्र बोस का जन्म उड़ीसा राज्य के कटक स्थान पर २३ जनवरी १८९७ को हुआ था। इनका परिवार बंगाल का एक सम्पन्न परिवार था। इनके पिता जानकी नाथ बोस बंगाल के एक प्रतिष्ठित और प्रसिद्ध वकील थे। इनकी माता प्रभावती धार्मिक और पतिव्रता स्त्री थी। ये १४ बहन भाई थे, जिसमें से ये नौंवें स्थान पर थे।

सुभाष चन्द्र बोस का बाल्यकाल बड़ी सम्पन्नता में व्यतीत हुआ। इन्होंने कभी भी किसी भी वस्तु का अभाव नहीं देखा। इनकी आवश्यकता अनुसार प्रत्येक वस्तु इन के पास होती थी। अभाव था तो केवल माता-पिता के वात्सल्य का। इनके पिता अपने पेशे में व्यस्त रहने के कारण परिवार और बच्चों को समय नहीं दे पाते थे और माता इतने बड़े परिवार के पालन पोषण में लगी रहने के कारण इन्हें ध्यान नहीं दे पाती थी जिससे ये बाल्यकाल से ही गम्भीर स्वभाव के हो गये। ये बस अपने बड़े भाई शरत् चन्द्र के करीबी थे और अपनी सभी बातों और निर्णयों पर उनसे सलाह लेते थे।

सुभाष चन्द्र बोस के पिता जानकी नाथ बोस वास्तविक रूप से बंगाल के परगना जिले के एक छोटे से गाँव के रहने वाले थे। ये वकालत करने के लिये कटक आ गये क्योंकि इनके गाँव में वकालत में सफल होने के कम अवसर थे। लेकिन कटक में इनके भाग्य ने इनका साथ दिया और सुभाष के जन्म से पहले ही ये अपने आपको वकालत में स्थापित कर चुके थे। ये अब तक एक प्रसिद्ध सरकारी वकील बन गये थे तथा नगर पालिका के प्रथम भारतीय गैर सरकारी अध्यक्ष भी चुने गये।

देशभक्ति सुभाष को अपने पिता से विरासत में मिली थी। इनके पिता सरकारी अधिकारी होते हुये भी कांग्रेस के अधिवेशनों में शामिल होने के लिये जाते रहते थे। ये लोकसेवा के कार्यों में बढ़-चढ़ कर भाग लेते थे। ये खादी, स्वदेशी और राष्ट्रीय शैक्षिक संस्थाओं के पक्षधर थे।

सुभाष चन्द्र बोस की माता प्रभावती उत्तरी कलकत्ता के परंपरावादी दत्त परिवार की बेटी थी। ये बहुत ही दृढ़ इच्छाशक्ति की स्वामिनी, समझदार और व्यवहारकुशल स्त्री थी साथ ही इतने बड़े परिवार का भरण पोषण बहुत ही कुशलता से करती थी।

प्रारम्भिक शिक्षा : सुभाष चन्द्र बोस की प्रारम्भिक शिक्षा कटक के ही स्थानीय मिशनरी स्कूल में हुई। इन्हें १९०२ में प्रोटेस्टेंट यूरोपियन स्कूल में प्रवेश दिलाया गया। ये स्कूल अंग्रेजी तौर-तरीके पर चलता था जिससे इस स्कूल में पढ़ने वाले बच्चों की अंग्रेजी अन्य भारतीय स्कूलों के छात्रों के मुकाबले अच्छी थी। ऐसे स्कूल में पढ़ने के और भी फायदे थे जैसे अनुशासन, व्यवहार और रख-रखाव आदि। इनमें भी अनुशासन और नियमबद्धता बचपन में ही स्थायी रूप से विकसित हो गयी।

इस स्कूल में पढ़ते हुये इन्होंने महसूस किया कि वो और उनके साथी ऐसी अलग-अलग दुनिया में रहते हैं जिनका कभी मेल नहीं हो सकता। सुभाष शुरू से ही पढ़ाई में अच्छे नंबरों से प्रथम स्थान पर आते थे लेकिन वो खेल कूद में बिल्कुल भी अच्छे नहीं थे। जब भी किसी प्रतियोगिता में भाग लेते तो उन्हें हमेशा शिकस्त ही मिलती। १९०९ में इनकी मिशनरी स्कूल से प्राइमरी की शिक्षा पूरी होने के बाद इन्हें रेवेंशॉव कॉलेजिएट में प्रवेश दिलाया गया।

इस स्कूल में प्रवेश लेने के बाद बोस में व्यापक मानसिक और मनोवैज्ञानिक परिवर्तन आये। ये विद्यालय पूरी तरह से भारतीयता के माहौल से परिपूर्ण था। सुभाष पहले से ही प्रतिभाशाली छात्र थे, बस बांग्ला को छोड़कर सभी विषयों में अव्वल आते थे। इन्होंने बांग्ला में भी कड़ी मेहनत की और पहली वार्षिक परीक्षा में ही अच्छे अंक प्राप्त किये। बांग्ला के साथ-साथ इन्होंने संस्कृत का भी अध्ययन करना शुरु कर दिया।

रेवेंशॉव स्कूल के प्रधानाचार्य (हेडमास्टर) बेनीमाधव दास का सुभाष के युवा मन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। माधव दास ने इन्हें नैतिक मूल्यों पर चलने की शिक्षा दी साथ ही ये भी सीख दी कि असली सत्य प्रकृति में निहित है अत: इसमें स्वंय को पूरी तरह से समर्पित कर दो। जिसका परिणाम ये हुआ कि ये नदी के किनारों और टीलों व प्राकृतिक सौंन्दर्य से पूर्ण एकांत स्थानों को खोजकर ध्यान साधना में घंटों लीन रहने लगे। सुभाष चन्द्र के सभा और योगाचार्य के कार्यों में लगे रहने के कारण इनके परिवार वाले व्यवहार से चिन्तित होने लगे क्योंकि ये अधिक से अधिक समय अकेले बिताते थे। परिवार वालों को इनके भविष्य के बारे में चिन्ता होने लगी कि इतना होनहार और मेधावी होने के बाद भी ये पढ़ाई में पिछड़ न जाये। परिवार की आशाओं के विपरीत १९१२-१३ में इन्होंने मैट्रिक की परीक्षा में विश्वविद्यालय में दूसरा स्थान प्राप्त किया जिससे इनके माता-पिता बहुत खुश हुये।

स्कूली जीवन में प्रथम राजनीति में प्रवेश : स्कूल के अन्तिम दिनों में सुभाष को प्रथम राजनीतिक प्रोत्साहन मिला जब इनसे मिलने कलकत्ता के एक दल (आदर्श दल) का दूत आया। उस दल का दोहरा उद्देश्य था- देश के नागरिकों का आध्यात्मिक उत्थान और राष्ट्र की सेवा। शीघ्र ही ये इस दल से जुड़ गये क्योंकि इनके विचार इस दल के उद्देश्यों से बहुत हद तक मिलते थे। इस दल का मुखिया एक डॉक्टर था जिससे बहुत लम्बे समय तक बोस सम्पर्क में रहे। ये सुभाष चन्द्र बोस के जीवन का प्रथम राजनैतिक अनुभव था जो भविष्य में इनके बहुत काम आया।

प्रारम्भिक परिवेश का विचारों पर प्रभाव : सुभाष चन्द्र बोस को पारिवारिक वातावरण में माता-पिता का बहुत अधिक प्रेम नहीं मिला जिससे अधिकांश समय अकेले व्यतीत करने के कारण बाल्यकाल में ही इनका स्वभाव गम्भीर हो गया। बचपन से ही ये मेहनती और दृढ़ संकल्प वाले थे। जब ये ईसाई मिशनरी के प्राइमरी स्कूल में पढ़ रहे थे इसी समय इन्होंने अपने व अपने सहपाठियों के बीच अन्तर को महसूस करते हुये पाया कि जैसे कि ये दो विभिन्न समाजों के बीच रह रहे हों।

रेवेंशॉव स्कूल में हेडमास्टर बेनीमाधव के सम्पर्क में आने पर ये अध्यात्म की ओर मुड़ गये। १५ साल की उम्र में इन्होंने विवेकानंद के साहित्यों का गहन अध्ययन किया और उनके सिद्धान्तों को अपने जीवन में अपनाया। इन्होंने तय किया आत्मा के उद्धार के लिये खुद परिश्रम करना जीवन का उद्देश्य होना चाहिये साथ ही मानवता की सेवा, देश की सेवा है, जिस में अपना सब कुछ समर्पित कर देना चाहिये। विवेकानंद के जीवन से प्रेरणा लेकर इन्होंने 'रामकृष्ण-विवेकानंद युवाजन सभा' का गठन किया, जिसका परिवार वालों तथा समाज ने विरोध किया फिर भी इन्होंने सभा के कार्यों को जारी रखा। इस तरह युवा अवस्था में पहुँचने के समय में ही एक सीमा तक मनोवैज्ञानिक विचारों की पृष्ठभूमि तैयार हो चुकी थी।

कलकत्ता में उच्च शिक्षा व सार्वजनिक जीवन : मैट्रिक की परीक्षा पास करने के बाद इनके परिवार जनों ने इन्हें आगे की पढ़ाई के लिये कलकत्ता भेज दिया। १९१३ में इन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय के सबसे प्रतिष्ठित कॉलेज प्रेजिडेंसी में एडमिशन (प्रवेश) लिया। सुभाष चन्द्र बोस ने यहाँ आकर बिना किसी देर के सबसे पहले आदर्श दल से सम्पर्क बनाया जिसका दूत इन से मिलने कटक आया था। उस समय इनके कॉलेज के छात्र अलग-अलग गुटों (दलों) में विभक्त थे। जिसमें से एक गुट आधुनिक ब्रिटिश राज-व्यवस्था की चापलूसी करता था, दूसरा सीधे-सादे पढ़ाकू छात्रों का था, एक दल सुभाष चन्द्र बोस का था- जो स्वंय को रामकृष्ण-विवेकानन्द का आध्यात्मिक उत्तराधिकारी मानते थे और एक अन्य गुट था क्रान्तिकारियों का गुट।

कलकत्ता का सामाजिक परिवेश कटक के छोटे से कस्बे के वातावरण से बिल्कुल अलग था। यहाँ की आधुनिक जीवन की चमक-धमक ने अनेकों विद्यार्थियों के जीवन को आकर्षित कर विनाश की ओर ले गयी थी, लेकिन सुभाष का निर्माण तो अलग ही मिट्टी से हुआ था। ये कलकत्ता कुछ दृढ़ विचारों, सिद्धान्तों और नये उद्देश्यों के साथ आये थे। इन्होंने पहले ही निश्चय कर लिया था कि ये लकीर के फकीर नहीं बनेंगें। ये जीवन को गम्भीरता से अपनाना जानते थे। कॉलेज का जीवन शुरु करते समय इन्हें इस बात का अहसास था कि जीवन का लक्ष्य भी है और उद्देश्य भी।

जब सुभाष कटक से कलकत्ता आये थे तो इनका स्वभाव आध्यात्मिक था। ये समाज सेवा करना चाहते थे और समाज सेवा योग साधना का ही अभिन्न अंग है। ये अपना ज्ञान बढ़ाने के लिये ऐतिहासिक और धार्मिक स्थानों पर घूमने जाते थे।

अपने कॉलेज के समय में बोस अरविन्द घोष के लेखन, दर्शन और उनकी यौगिक समन्वय की धारणा से प्रेरित थे। इस समय तक इनका राजनीति से कोई सीधा संबंध नहीं था। ये तरह-तरह के धार्मिक और सामाजिक कार्यों में खुद को व्यस्त रखते थे। इन्हें कॉलेज की पढ़ाई की कोई परवाह नहीं रहती क्योंकि ज्यादातर विषयों के लेक्चर इन्हें ऊबाऊ लगते थे। ये वाद-विवादों में भाग लेते थे, बाढ़ और अकाल पीड़ितों के लिये के लिये चन्दे इकट्ठा करने जैसे समाजिक कार्यों को करने में लगे रहने के कारण १९१५ की इंटरमीडियेट की परीक्षा में ज्यादा अच्छे नम्बर प्राप्त नहीं कर पाये। इसके बाद इन्होंने

आगे की पढ़ाई के लिये दर्शनशास्त्र को चुना और पूरी तरह से पढ़ाई में लग गये।

प्रेजिडेंसी कांड़ (1916) व शिक्षा में उत्पन बाधाएं : बीए आनर्स (दर्शन-शास्त्र) करते समय सुभाष चन्द्र बोस के जीवन में एक घटना घटी। इस घटना ने इनकी विचारधारा को एक नया मोड़ दिया। ये बी. ए. आनर्स (दर्शनशास्त्र) के प्रथम वर्ष के छात्र थे। लाइब्रेरी के स्व-अध्ययन कक्ष में पढ़ते हुये इन्हें बाहर से झगड़े की कुछ अस्पष्ट आवाजें सुनायी दे रही थी। बाहर जाकर देखने पर ज्ञात हुआ कि अंग्रेज प्रोफेसर ई.एफ. ओटेन ने इन्हीं के क्लास के कुछ छात्रों को पीटाई कर रहे थे। मामले की जाँच करने पर पता चला कि प्रोफेसर ओटेन की क्लास से लगे बरामदे में बी. ए. प्रथम वर्ष के कुछ छात्र शोर कर रहे थे, लेक्चर में बाधा उपस्थित करने के जुर्म में प्रोफेसर ने पहली लाइन में लगे छात्रों को निकाल कर पीट दिया था।

सुभाष चन्द्र अपनी क्लास के प्रतिनिधि थे। इन्होंने छात्रों के अपमान करने की इस घटना की सूचना अपने प्रधानाचार्य को दी। अगले दिन, इस घटना के विरोध में छात्रों द्वारा कॉलेज में सामूहिक हड़ताल का आयोजन किया गया, जिसका नेतृत्व सुभाष चन्द्र बोस ने किया। ये कॉलेज के इतिहास में पहली बार था जब छात्रों ने इस प्रकार की हड़ताल की थी। हर तरफ इस घटना की चर्चा हो रही थी। मामला अधिक न बढ़ जाये इसलिये अन्य शिक्षकों और प्रबंध समिति की मध्यस्थता से उस समय तो मामला शान्त हो गया, लेकिन एक महीने बाद उसी प्रोफेसर ने दुबारा इनके एक सहपाठी को पीट दिया जिस पर कॉलेजों के कुछ छात्रों ने कानून को अपने हाथों में लिया जिसका परिणाम ये हुआ कि छात्रों ने प्रोफेसर को बहुत बुरी तरह पीटा। समाचार पत्रों से लेकर सरकारी दफ्तरों तक सभी में इस घटना ने हलचल मचा दी।

छात्रों पर ये गलत आरोप लगाया गया कि प्रो. ओटेन पर हमला करते समय उन्हें सीढ़ियों से धक्का देकर नीचे गिराया गया था। सुभाष इस घटना के चश्मदीद गवाह थे। वो जानते थे कि ये आरोप सिर्फ एक कोरा झूठ है, एक प्रत्यक्षदर्शी (चश्मदीद गवाह) होने के नाते बिना किसी ड़र के विरोधाभास के ये बात दावो के साथ कह सकते थे। छात्रों की निष्पक्षता के लिये ये बात साफ होनी आवश्यक थी। लेकिन ये घटना सरकार और कॉलेज की अध्यापकों की प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गयी। छात्रों की ओर से किसी भी प्रकार की सफाई की अवहेलना करते हुये कॉलेज के प्रधानाचार्य ने प्रबंध समिति के सम्मानित व्यक्तियों से सलाह करके कॉलेज के शरारती बच्चों को स्कूल से निकाल दिया। इन निकाले गये छात्रों की हिट लिस्ट में सुभाष चन्द्र बोस का नाम भी शामिल था। उन्होंने सुभाष को बुलाकर कहा- बोस! तुम कॉलेज में सबसे ज्यादा परेशानी उत्पन्न करने वाले (उपद्रवी) छात्र हो। मैं तुम्हें निलम्बित (सस्पेंड) करता हूँ। सुभाष! धन्यवाद।

इतना कहकर वो घर आ गये। इस निर्णय के बाद प्रबंध समिति ने प्रधानाचार्य के इस निर्णय पर मोहर लगा दी। इन्हें कॉलेज से निकाल दिया गया। सुभाष चन्द्र ने विश्वविद्यालय से किसी अन्य कॉलेज में पढ़ने की अनुमति माँगी जिसे अस्वीकार कर दिया गया। इस तरह इन्हें पूरे विश्वविद्यालय से निष्काषित कर दिया गया।

कुछ राजनीतिज्ञों ने इसे प्रधानाचार्य के अधिकार के बाहर का निर्णय कहा जिसे जाँच कमेटी ने अपने हाथ में ले लिया। जाँच कमेटी के सामने इन्होंने छात्रों का प्रतिनिधित्व किया और कहा कि वो प्रोफेसर पर हमले को सही नहीं मानते पर उस समय छात्र इतने भड़के हुये थे कि उन्हें नियंत्रित करना बहुत मुश्किल था। इसके बाद इन्होंने कॉलेज में अंग्रेजों द्वारा किये जाने वाले बुरे व्यवहार का वर्णन किया। जब कमेटी की रिपोर्ट आयी तो छात्रों के पक्ष में कोई भी शब्द नहीं था, सिर्फ सुभाष चन्द्र के बारे में ही जिक्र था। इस तरह उनके आगे की पढ़ाई करने के रास्ते बन्द हो गये। लेकिन कठिनाई के इस समय में उनके परिवार वालों ने उनका साथ दिया। इनके संबंधी जानते थे कि वो जो कर रहे हैं, सही कर रहे है। सुभाष को भी अपने किये पर कोई पछतावा नहीं था। आगे की पढ़ाई की कोई सम्भावना न रहने पर ये पूरी तरह से समाज के कार्यों में लग गये। इस घटना ने इनके जीवन को पूरी तरह से बदल कर रख दिया। इनकी सोच और विचारधारा में काफी परिवर्तन हो गये। इस समय में इन्होंने अपने मनोभावों को जानने के लिये आत्म विश्लेषण किया।

बोस के नेतृत्वकारी गुणों, उनके विचारों और उनके द्वारा किये गये कार्यों से अंग्रेज सरकार के मन मे भय बैठ गया। जब वो लाहौर से कलकत्ता आ रहे थे उसी समय उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और एक साल के कठोर कारावास की सजा सुनायी और इन्हें कलकत्ता जेल में रखा गया। इस समय गाँधी जी का नमक सत्याग्रह आंदोलन बड़े जोरों से चल रहा था। बोस को जगह-जगह से आन्दोलन के सफल होने की सूचना मिली। वो अपने साथी बन्दियों के साथ इस सफलता की खुशियाँ मनाते। इस बात से जेल अधिकारी इनसे चिढ़ गये और इनकी उससे झड़प हो गयी। जेल अधिक्षक ने इनके साथियों के साथ ही इन्हें भी बहुत बुरी तरह से पीटा लेकिन इनके उत्साह को कम नहीं कर पाया।

कलकत्ता जेल में रहते हुये ही सुभाष चन्द्र बोस को कलकत्ता नगर निगम का महापौर चुना गया। महापौर चुने जान के बाद भी इन्हें लगभग १ साल बाद जेल से आजाद किया गया। इनके जेल से आजाद होने के बाद सभा का आयोजन किया गया जिसमें देशमुख सी.आर.दास द्वारा किये गये कार्यों को याद करके बहुत भावुकता पूर्ण भाषण दिया। १९२४-१९३० तक का समय कलकत्ता के विकास का चर्मोत्कर्ष था। १९२४-३० के बीच के समय में प्रत्येक राष्ट्रीय उत्सव को भव्य समारोह के रुप में मनाया जाता था। इस कार्यक्रम में उन्होंने अपनी भावी योजनाओं की घोषणा की।

२६ जनवरी १९३१ को दूसरे स्वाधीनता दिवस के अवसर पर रैली को आयोजित किया गया। जिसमें कलकत्ता नगर निगम के वरिष्ठ अधिकारियों ने भी भाग लिया। सुभाष चन्द्र बोस रैली की

अगुवायी करते हुये नगर निगम मुख्यालय से मैदान की ओर चले कुछ दूर जाने पर घुड़सवार पुलिस कर्मियों की शक्तिशाली टुकड़ी ने उन पर हमला कर दिया और बड़ी क्रूरता से लाठी चार्ज करने लगे। उन्होंने बोस को बहुत बुरी तरह से पीटा और गिरफ्तार कर लिया। इस गिरफ्तारी के बाद सुभाष चन्द्र बोस को मार्च १९३१ में रिहा किया गया। जेल से बाहर आने के बाद बोस गाँधी से मिलने गये और भावी आन्दोलन की रुप- रेखा तैयार की।

एमिली शेंकल से विवाह : आस्ट्रिया में इलाज के लिये रुकने के दौरान इन्होंने कई पत्र और पुस्तकें लिखी थी, जिन्हें इंग्लिश में टाइप करने के लिये एक टाइपिस्ट की आवश्यकता महसूस हुई। इन्होंने इस संबंध में अपने एक मित्र से बात की जिस पर इनके मित्र ने इनका परिचय एमिली शेंकल से कराया। इन्हें स्वभाविक आकर्षण के कारण एमिली से प्रेम हो गया और १९४२ में बोस ने शेंकल से विवाह कर लिया। इनका विवाह बाड गास्टिन स्थान पर हिन्दू रीति-रिवाजों के अनुसार हुआ। इस विवाह से इनके एक पुत्री भी हुई जिसका नाम अनीता बोस रखा गया।

सुभाष चन्द्र एक लम्बी बीमारी और यूरोप में उपचार के बाद वर्ष १९३८ के अन्त में भारत लौट कर आये। कलकत्ता में इनका भव्य स्वागत हुआ। इनके भारत लौटने के साथ ही इन्हें कांग्रेस अध्यक्ष बनाने की अटकलें लगायी जाने लगी। कांग्रेस समिति में सी.आर.दास के बाद कोई भी बंगाल प्रान्त से अध्यक्ष नहीं चुना गया था। कांग्रेस के ५१वें अधिवोशन में सुभाष चन्द्र बोस को कांग्रेस समिति का अध्यक्ष निर्वाचित किया गया।

सुभाष चन्द्र बोस अध्यक्ष निर्वाचित होते ही कांग्रेस की जड़ों को मजबूत करने में लग गये। अपने कार्यक्षेत्रों को बढ़ाने के साथ ही इन्होंने इस बात का विशेष ध्यान रखा कि ब्रिटिश सरकार द्वारा कांग्रेस के सदस्यों को किसी भी परिस्थिति में न तो कमजोर किया जा सके और न ही झुकाया जा सके। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखकर बोस ने देश का व्यापक दौरा किया। ये भारतीय जनता को बड़े पैमाने पर राष्ट्रीय संघर्ष के लिये तैयार कर रहे थे।

सुभाष को पूरा विश्वास था कि युद्ध ब्रिटिश शासन को जड़ से उखाड़ सकता है। लेकिन इस बार वो पहले की तरह जेल की सलाखों के पीछे निष्क्रिय पड़े रहकर ये सब नहीं देखना चाहते थे अत: इन्होंने सरकार को चुनौती दी कि उन्हें जेल में रखने के पीछे सरकार के पास कोई वैधानिक कारण नहीं है। यदि उन्हें मुक्त नहीं किया गया तो वो आमरण अनशन कर देंगें। इस बात को सरकार ने गम्भीरता से नहीं लिया। जेल में एक हफ्ते के अनशन के दौरान इनका स्वास्थ्य फिर से खराब होने लगा। बंगाल सरकार ने भयभीत होकर उच्च अधिकारियों की एक गुप्त बैठक बुलायी जिसने ये निर्णय लिया गया कि जब तक ये स्वस्थ्य नहीं हो जाते तब तक के लिये छोड़ दिया जाये और स्वास्थ्य होते ही पुन: जेल में डाल दिया जाये। इस निर्णय के साथ ही इन्हें आजाद कर दिया गया।

सुभाष चन्द्र बोस का लापता होना या नेताजी की रहस्यमयी मृत्यु : नेताजी ने आजाद हिन्द फौज के विघटन के बाद देशवासियों के नाम संदेश में कहा- 'भारतीय स्वाधीनता संग्राम का पहला अध्याय पूरा हुआ और इस अध्याय में पूर्व एशियाई बेटे-बेटियों का स्थान अमिट रहेगा। हमारी अस्थाई असफलता से निराश न हो। दुनिया की कोई ताकत भारत को गुलाम नहीं रख सकती।'

उस समय के उपलब्ध सूत्रों के अनुसार ये कहा जाता हे कि रंगून में पराजय के बाद बैंकॉक लौटते समय से ही नेताजी ने सोवियत रूस जाने का निर्णय कर लिया था। १५ अगस्त १९४५ को नेताजी ने अपनी अस्थाई सरकार के साथ अन्तिम बैठक की गयी जिसमें फैसला किया गया कि आबिद हसन, देवनाथ दास, नेताजी हबीबुर्रहमान, एस.ए.अय्यर और कुछ अन्य साथियों के साथ बोस टोकियों से चले जाये। ये लोग विमान से बैंकॉक और सैगोन रुकते हुये रूस के लिये गये। सैगोन में नेताजी को बड़े जापानी विमान में बिठा दिया गया। नेताजी ने इस विमान से हबीबुर्रहमान के साथ यात्रा की। १८ अगस्त को ये लड़ाकू विमान से ताइवान के लिये गये और इसके बाद इनका विमान रहस्यमयी तरीके से गायब हो गया। २३ अक्टूबर १९४५ को टोकियों के रेडियो प्रसारण ने एक सूचना प्रसारित की कि ताइहोकू हवाई अड्डे पर विमान उड़ान भरते समय ही दुर्घटना ग्रस्त हो गया जिसमें चालक और इनके एक साथी की घटना स्थल पर ही मृत्यु हो गयी और नेताजी आग से बुरी तरह झुलस गये। इन्हें वहाँ के सैनिक अस्पताल में भर्ती कराया गया और इसी अस्पताल में इन्होंने अपने जीवन की आखिरी सांस ली। OO

नेताजी की मृत्यु पर विवाद : इस प्रकार नेताजी सुभाष चन्द्र बोस की रहस्यमयी मृत्यु पर बहुत से विवाद खड़े हो गये। किसी को भी इस बात पर विश्वास नहीं हो पा रहा था कि जो व्यक्ति लोगों के हृदय में स्वतंत्रता की चिंगारी को जलाता रहा वो अब नहीं रहा। बंगाल प्रान्त के उनके समर्थकों ने उनकी विमान दुर्घटना में मृत्यु को सच नहीं माना। जिसके बाद 1947 को देश आजाद होने के बाद भारत की नयी निर्वाचित सरकार ने इनकी मृत्यु की जाँच के लिये तीन जाँच कमीशन नियुक्त किये। जिसमें से दो ने उनकी विमान दुर्घटना में मृत्यु को सही मान लिया जबकि एक कमीशन ने अपनी रिपार्ट में नेताजी की विमान दुर्घटना में मृत्यु की कहानी को कोरा झूठ बताया। भारत सरकार ने इस रिपोर्ट को बिना कोई ठोस कारण दिये रद्द कर दिया और बाकि दो कमीशन की रिपोर्ट के आधार पर नेताजी सुभाष चन्द्र बोस की विमान दुर्घटना में मृत्यु की पुष्टि कर उन रिपोर्टों को सार्वजनिक कर दिया।

'कहो वेद 'हां' या सहो वेदना'

देव नारायण भारद्वाज 'वरेण्यम'
अवन्तिका, रामघाट मार्ग, अलीगढ़

वाणी का आश्रय लेकर मैं ऋग्वेद की ऋचाओं की शरण में जाता हूं। मेरी वाणी ज्ञान व सत्य का वाचन करने लगती है। मन का आश्रय लेकर मैं यजुर्वेद के अध्यायों की शरण में जाता हूं। इसके स्वाध्याय से मेरा मन यज्ञीय कर्मों में लग जाता है। मैं अपने प्राण व जीवनी शक्ति का आश्रय लेकर सामवेद के साम मंत्रों की शरण में जाता हूं। मैं बोलने में, लोग सुनने में आनंदित होते हैं। मैं अपने श्रोत्रों का आश्रय लेकर चक्षु, ब्रह्मवेद-अथर्ववेद के विज्ञान की शरण में जाता हूं मेरा दृष्टिकोण वैज्ञानिक, तर्कपूर्ण, ज्योतिर्मय बन जाता है। सार तत्व यह है कि (वाग ओजः) सत्यवाणी के बलसे (सह ओजः) सहयोग का बल बढ़ जाता है। पारस्परिक एकता से (मयि प्राणापानौ) मुझमें दोषों की निवृति होकर प्राणशक्ति का संचार हो जाता है।

हां या ना, इन दो नन्हें शब्दों का संसार में बड़ा बोलबाला है। ये जिसके साथ जुड़ जाते हैं, वह या तो सक्रिय हो जाता है या निष्क्रिय, जीवन्त हो जाता है या मृतवन्त। इसलिए इन शब्दों का विवेक पूर्वक प्रयोग वांछित है, अन्यथा घर-समाज में प्रायः हास्यास्पद ही नहीं, त्रासद स्थिति उत्पन्न हो जाती है। बड़े भाई को अपनी धर्मपत्नी को ससुराल से बिदा कराने जाना था। अति व्यस्तता वश उसने अपने छोटे भाई को भाभी को बुला लाने के लिए तैयार किया।

छोटा भाई ठहरा मंद बुद्धि, उसने जाने में हिचकिचाहट अनुभव की, कहा मैं तो वहां बात भी नहीं कर सकता। बड़े भाई ने समझाया अधिक कुछ नहीं बोलना, हां-नहीं कहते रहना, रुकना नहीं शीघ्र बुला लाना अपनी भाभी को। ससुराल पहुंचने पर प्रश्नोत्तर का क्रम कुछ इस प्रकार चालू हुआ। बड़े भाई नहीं आये? हां। वे ठीक तो हैं? ना। बीमार हैं? हां। चलते-फिरते जीवित हैं? ना। क्या तुम्हारी भाभी विधवा हो गयी? हां। यह सुनते ही वहां रोना-पीटना प्रारम्भ हो गया।

ससुराली जन उस मंदबुद्धि भाई व उसकी भाभी को अतिशय आकुल-व्याकुल-शोकाकुल दशा में लेकर उसके घर पहुंचे, तो क्या देखते हैं! बड़े; भाई जीवित-जागृत-हंसते-मुस्काते हुए आगंतुकों के स्वागत में खड़े हैं। उन्हें बताया गया कि आपके छोटे भाई ने तो हम लोगों को अपनी भाभी के विधवा होने का समाचार सुनाकर रुला दिया। बड़े भाई ने अपने छोटे भाई को डांटते हए समझाना चाहा कि मेरे जीवित रहते हुए तुम्हारी भाभी विधवा कैसे हो सकती है! छोटे भाई ने जो उत्तर दिया, उसे सुनकर अभी तक रोने वाले सभी खिलखिलाकर हंस पड़े। वह बोला, तुम्हारे रहते अपनी दादी विधवा हुई की नहीं। माता विधवा हुई तब भी तुम थे। तब तुम्हारे रहते भाभी विधवा नहीं हो सकती है क्या? बात हास्य की है, साथ ही हां-ना के रहस्य की भी।

वेद के साथ जोड़िये- हां, तो मिलेगा वेदोपदेश, फिर हमारे जीवन का कल्याण ही कल्याण है। वेद कह उठेगा- उद्यान ते पुरुष नावयानम् (अथर्ववेद ८.१.६) हे पुरुष! तुम्हारी उन्नति हो- अवनति कदापि नहीं। जाने अनजाने कैसे भी वेद के साथ जुड़ गया ना- तो बन गया शब्द 'वेदना' अर्थात् व्यथा, पीड़ा, सन्तापकारी अकल्याण। इसलिए हमें हर क्षण सतर्क रहना होगा कि हमारे जीवन में वेद ही वेद रहे, कहीं छिटककर इसके साथ 'ना' न लग जाये, जिससे हम वेदना के भंवर जाल में फंसे रह जायें। नीचे की दिशा-वसुंधरा पर रहते हुए यदि हम वेद से जुड़ेंगे, तो शेष पांचों दिशाएं हमारे लिए विद् ज्ञाने, विद् सत्तायाम्, विद् विचारणे, विद्-चेतनाख्यान निवासेषु, विद् लृ लाभे की वर्षा करने लगेंगी। हम जानने-समझने लगेंगे, हम अच्छी प्रकार रहने-जीने लगेंगे, हम चिंतन-मनन करने वाले बनेंगे, स्वशरीर व संसार का सूझ-बूझ के सात समन्वय करने वाले बनेंगे, और लोक-परलोक की उपब्धि एवं संपादन में समर्थ होंगे। आपने देखा, वेद की हां में हां मिलाने से हमें मिलता है प्रेय- श्रेयदायी उपरोक्त पञ्चामृत जिसमें ज्ञान, अस्मिता, विचारणा, चेतना एवं शुभ लाभ का मधुर मिश्रण, हर पल हमें वेदना से बचाता है। वेद के साथ हामी भरने का चमत्कारी लाभ मानव को कैसे मिलता है? वेद से ही पूछते हैं।

ऋचंवाचं प्रपद्ये मनो यजुः प्रपद्ये साम प्राणं प्रपद्ये चक्षुः श्रोत्रं प्रपद्ये। वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ।। यजुर्वेद ३६.१।।

वाणी का आश्रय लेकर मैं ऋग्वेद की ऋचाओं की शरण में जाता हूं। मेरी वाणी ज्ञान व सत्य का वाचन करने लगती है। मन का आश्रय लेकर मैं यजुर्वेद के अध्यायों की शरण में जाता हूं। इसके स्वाध्याय से मेरा मन यज्ञीय कर्मों में लग जाता है। मैं अपने प्राण व जीवनी शक्ति का आश्रय लेकर सामवेद के साम मंत्रों की शरण में जाता हूं। मैं बोलने में, लोग सुनने में आनंदित होते हैं। मैं अपने श्रोत्रों का आश्रय लेकर चक्षु, ब्रह्मवेद-अथर्ववेद के विज्ञान की शरण में जाता हूं मेरा दृष्टिकोण वैज्ञानिक, तर्कपूर्ण,

ज्योतिर्मय बन जाता है। सार तत्व यह है कि (वाग ओज:) सत्यवाणी के बलसे (सह ओज:) सहयोग का बल बढ़ जाता है। पारस्परिक एकता से (मयि प्राणापानौ) मुझमें दोषों की निवृति होकर प्राणशक्ति का संचार हो जाता है। मेरे जीवन में चार वेद उनके चार व्रतों के रूप में जीवंत हो उठते हैं। पंडित हरिशरण सिद्धांतालंकार के इस पदार्थ में महर्षि दयानंद का भावार्थ जोड़ दें तो मंत्रार्थ में चार चांद लग जायेंगे। 'हे विद्वानों! तुम लोगों के संग से मेरी ऋग्वेद के तुल्य प्रशंसनीय वाणी, यजुर्वेद के समान मन, समावेग के सदृश प्राण और सत्रह तत्वों से युक्त लिंग शरीर स्वस्थ, सब उपद्रवों से रहित और समर्थ होवे।' आपने देखा- वेद के साथ हामी भरने से मनुष्य के समग्र आचार-विचार-व्यवहार एवं व्यक्तित्व में निखार आ जाता है। उसके पांच प्राण, पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां, मन व बुद्धि रूपी सत्रह तत्व सुखर-मुखर-प्रखर ओजस्वी हो जाते हैं।

लोक कल्याण का ध्येय धारणकर्ता शासक ऐसा प्रबंधन करते थे कि वेद का संदेश वातावरण में वहता रहे और जन-जन 'संश्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन विराधिषि' (अथर्व. १.१.४) वेद के अनुकूल चलें प्रतिकूल नहीं। महात्मा विदुर ने अपना अनुभव व्यक्त करते हु, कहा है- श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा। असम्भिन्नर्यमर्याद: पंडिताख्यांलभेत च।।' विदुरनति (१.३०) जिसका शास्त्रज्ञान विवेक बुद्धि का अनुसरण करता है और बुद्धि शास्त्र ज्ञान के अनुकूल चलने वाली है, जो आर्य मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं करता, वह व्यक्ति पंडित कहलाता है। 'बुद्धिश्रेष्ठानि कर्माणि बाहु मध्यानि भारत! तानि जंघाजघन्यानि भारप्रत्यवराणि च।।' वि.नि. (३.७४) हे भारत! बुद्धि से सिद्ध होने वाले कार्य उत्तम, भुजबल से होने वाले मध्यम, जो लुक छिप कर भागदौड़ से किये जायें वे अधम और जो सिर पर संकट डाल दें वे कार्य नीचतर होते हैं। विश्व के प्रथम महर्षि सम्राट मनु ने 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्' (मनुस्मृति अध्याय-२ श्लोक ६) कहते हुए धर्म के चार मूल स्रोत वर्णित किये हैं- यथा अखिल वेद, स्मृति, सदाचार, आत्म तुष्टि अर्थात् जिस कार्य के करने से आत्मा में भय, शंका व लज्जा न उत्पन्न हो अपितु सात्विक संतुष्टि व प्रसन्नता अनुभव हो, ये चार 'धर्ममूलम्' धर्म के मूलस्रोत व आधार हैं। राजाओं, राजपुरोहितों एवं राष्ट्र सेना नायकों ने सृष्टि के शुभारम्भ से करोड़ों वर्ष तलक धरती पर ऐसी ही सत्ता को स्थापित व सुख संपादित रखा। सभी ने जनजन में वेद की धारणा को दृढ़ बनाये रखा। सभी कहते थे वेद- हां और पास नहीं आती थी- वेदना। वैदिक युगीन सम्राट वेद के प्रति इतने संवेदनशील थे कि वे वेद की अवज्ञा करने वालों को आर्यावर्त की वसुधा पर रहने नहीं देते थे। उनको मिटाते नहीं-बसाते थे। उन्हें विमान या जलयानमें भरकर सागर पार कर देते थे और उनके लिए जीवन-यापन की व्यवस्था भी कर देते थे। इस तथ्य को मैं महर्षि के पूना-प्रवचन के आधार पर प्रकट कर रहा हूं। कुछ सौ वर्ष पूर्व यही कार्य इंग्लैंड ने भी किया था, जिससे अमेरिका व आस्ट्रेलिया जैसे राष्ट्रों का उदय हुआ। आर्यावर्त में जहां वेद के अध्यात्म व विज्ञान में समन्वय किया जाता रहा है, वहीं ये द्वीप- द्वीपान्तर में नव गठित देश विज्ञान की भौतिक सुखदायी विभूतियों में रमण करने लगे। जहां इन्होंने विद्या अनुशासन, शोभा स्वच्छता व समृद्धि में असीम उन्नति की, वहां उन्होंने नैतिक सदाचार को दरकिनार कर दिया। इतने पर भी आर्यावर्त या भारत निखिल विश्व का चक्रवर्ती सम्राट बना रहा। रामायण काल में वेद के साथ हुई 'हां-ना' की उठापटक का उदाहरण यहां पर अप्रासंगिक नहीं होगा। राम चार भाई थे। रावण भी चार भाई था। राम ने ऋषि वशिष्ठ-विश्वामित्र के गुरुकुलों में जाकर वेद की आध्यात्मिक, वैज्ञानिक वा व्यावहारिक शिक्षा ग्रहण की और उसका राष्ट्रोत्थान व जन कल्याण में वितरण किया। रावण ने भी तपस्या पूर्वक वेद का अध्ययन ही नहीं, प्रत्युत उसका भाष्य भी किया किंतु वह वेद के अध्यात्म-दर्शन को एक ओर छोड़कर उसके विज्ञान-रथ पर आरूढ़ हो गया। 'माभ्राता भ्रातरं द्विक्षत्' (अथर्व.३.३०.३) भाई-भाई से द्वेष न करें- वेदके इस आदेश के प्रति राम ने कहां- हां। चारों भाई हर सुखदा-विपदा की स्थिति में परस्पर आबद्ध बन्धु एक बने रहे। वेद वर्चस्व के लिए आततायियों के ध्वंस हेतु वनगमन की स्थिति में राम चित्रकूट धाम में रहें, तो अनुज भरत अयोध्या के सिंहासन पर नहीं जाकर नंदीग्राम में रहे। इस वेद वाक्य को रावण ने भी पढ़ा था किंतु गढ़ा नहीं। देवताओं के कोषाध्यक्ष कुबेर द्वारा बसाई गई स्वर्णमयी लंका नगरी में ही जाकर अधिकार कर लिया, उनका पुष्पक विमान भी हथिया लिया, जिस पर सवारी करके अपने अग्रज कुबेर को तंग करने में तो लगा ही रहा, अपने अनुज भ्राताओं के वेदानुकूल सत्यरामर्श को सुनकर भी कहता चला गया-ना-ना। परिणाम स्वरूप वेदानुयायी राम को उसका संहार कुछ इस प्रकार करना पड़ा, कि हर कोई कहने को विवश हो गया- 'एक लख पूत सवा लख नाती, ता रावण-घर दिया ना बाती' एक ईंट खिसकने से जैसे सम्पूर्ण दीवार दरकने लगती है, वैसे ही वेद-विरोधी अपसंस्कृतियों का अनमेल मिश्रण वेद के सुरक्षा कवच की कीलों को ढीला करने का कोई अवसर हाथ से नहीं जाने देता। राम-भरत भ्राताओं ने मंथरा के विष-वमन को नीलकण्ठ बनकर उसे कण्ठ से नीचे उदर तक उतरने नहीं दिया। अवसंस्कृति का संवाहक महाभारत काल में मामा शकुनि बनकर आ गया, तो सेविका मंथरा से उसके मामा का ममत्व संबंध भारी पड़ गया। वेद के भेद को बिना समझे दुर्योधन ने कहा दिया था- ना, फिर तो उसने गुरु, पितामह, पिता-माता सभी के निर्देश ठुकरा कर कह दिया-ना-ना। सर्वमान्य योग योद्धा श्रीकृष्ण के संधि प्रस्ताव के प्रति भी कह दिया था ना-ना-ना। चक्र सुदर्शनधारी मुरली मनोहर माधव का उद्घोष- 'परित्राणाय साधूनां विनाशायच दुष्कृताम्' सफलीभूत हुआ।

OO

वर्तमान भारत में
श्रीकृष्ण की प्रासंगिकता

स्वामी देवव्रत

श्री कृष्ण हमारे सांस्कृतिक मूल्यों की पहचान है। कोई भी चीज अपने एक नियत समय के बाद अपनी प्रासंगिकता खो देती है या उसके स्वरूप में बदलाव आ जाता है। खुद कृष्ण ने ही कहा है- 'परिवर्तन संसार का नियम है।' लेकिन कृष्ण की शिक्षाएं कृष्ण का जीवन और कृष्ण की गीता आज भी हमारे लिए उतना ही प्रासंगिक है। कृष्ण मर्यादाओं के बोझ से मुक्त थे। वह सुसंस्कृत ढंग से उन्मुक्त जीवन जिया और मानव जाति को परंपराओं और मर्यादाओं की बेड़ियों से मुक्त होकर जीने का उपदेश दिया।

आज भारत में सशक्त लोकतंत्र होने के बावजूद लोग भ्रष्ट नेताओं और राजाओं (ए राजा) से त्रस्त हैं। लोगों को भ्रष्ट सत्ताधीशों, मठाधीशों और बलात्कारियों से छुटकारा चाहिए। उन्हें 56 इंच के सीने वालों की दरकार है। 56 इंच अर्थात चौड़ी छाती वाले। अर्जुन ने कृष्ण को कुरुक्षेत्र में चौड़ी छातीवाले कहकर भी संबोधित किया है।

कृष्ण के शुरुआती जीवनकाल से ही हम बहुत कुछ सीख सकते है। उनके मनमोहक बालरूप से शिशु-मृत्युदर और बच्चों के कुपोषण पर काम करने की प्रेरणा मिलती है। उन्हें गाय बहुत पसंद थी। भारत एक कृषि-प्रधान देश है। गाय का इसमें बहुत बड़ा योगदान है। एक गाय दूध, दही, मक्खन, पनीर और घी के अलावा भी बहुत कुछ देती है। गाय का बछड़ा जब बैल बन जाता है तो इससे खेत की जुताई करते हैं। आज भी छोटे किसान खेत जुताई और माल ढुलाई (बैलगाड़ी) के लिए बैलों पर ही निर्भर है। इसके अलावा ऑर्गेनिक खेती के लिए भी इन्हीं पशुओं पर निर्भर रहना पड़ता है। इसके गोबर से किसान कंपोस्ट खाद और ऑर्गेनिक खाद बनाते है।

गीता का ज्ञान आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना उस समय था। गीता को लेकर आज भी बड़े-बड़े विश्वविद्यालयों में शोध हो रहे हैं। गीता हमें जीवन को भरपूर जीने की प्ररणा देती है, कर्मयोग की शिक्षा देती है। हमारे लिए जीवंत गुरु, मार्गदर्शक और पथप्रदर्शक का काम करता है। यह हमारे लिए एक संविधान की तरह है जो कर्तव्यों के साथ-साथ जिम्मेदारियों का भी ज्ञान कराती है। वह हमें अन्याय के खिलाफ लड़ने की भी प्रेरणा देते हैं। आज हम जहां भी कुछ अपने और दूसरों के साथ गलत होते देखते हैं उसका विरोध करने के बजाय हम अपने जिम्मेदारी से भागने की कोशिश करते हैं।

गीता के माध्यम से कृष्ण ने अर्जुन को अनासक्त कर्म यानी 'फल की इच्छा किए बिना कर्म' करने की प्रेरणा दी। इसके पीछे का मूलभाव यह है कि हम यदि फल की इच्छा किए बिना काम करते रहें तो विभिन्न तरह की टेंशन-फ्रस्टेशन से बच सकते हैं।

संगीत और कलाओं का हमारे जीवन में विशिष्ट स्थान है। कृष्ण ने मोरपंख और बांसुरी धारण करके कला, संस्कृति और पर्यावरण के प्रति अपने लगाव को दर्शाया। इनके जरिए उन्होंने संदेश दिया कि जीवन को सुंदर बनाने में संगीत और कला का भी महत्वपूर्ण योगदान है।

कमजोर और निर्बल का सहारा बनने की सीख कृष्ण से ले सकते हैं। निर्धन बाल सखा सुदामा हो या षड्यंत्र के शिकार पांडव, श्रीकृष्ण ने सदा निर्बलों का साथ दिया और उन्हें मुसीबत से उबारा।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भुर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि

संसार के प्रथम शिक्षक थे श्रीकृष्ण : समग्र विश्व की चेतना ने पूरब से उदित ज्ञान के सूर्योदय में ही अपने अस्तित्व की उड़ानें भरी हैं। सदा-सर्वदा जब भी ज्ञान के प्रारब्ध

गीता के माध्यम से कृष्ण ने अर्जुन को अनासक्त कर्म यानी 'फल की इच्छा किए बिना कर्म' करने की प्रेरणा दी। इसके पीछे का मूलभाव यह है कि हम यदि फल की इच्छा किए बिना काम करते रहें तो विभिन्न तरह की टेंशन-फ्रस्टेशन से बच सकते हैं।

संगीत और कलाओं का हमारे जीवन में विशिष्ट स्थान है। कृष्ण ने मोरपंख और बांसुरी धारण करके कला, संस्कृति और पर्यावरण के प्रति अपने लगाव को दर्शाया। इनके जरिए उन्होंने संदेश दिया कि जीवन को सुंदर बनाने में संगीत और कला का भी महत्वपूर्ण योगदान है।

कमजोर और निर्बल का सहारा बनने की सीख कृष्ण से ले सकते हैं। निर्धन बाल सखा सुदामा हो या षड्यंत्र के शिकार पांडव, श्रीकृष्ण ने सदा निर्बलों का साथ दिया और उन्हें मुसीबत से उबारा।

संसार के प्रथम शिक्षक थे श्रीकृष्ण : **समग्र विश्व की चेतना ने पूरब से उदित ज्ञान के सूर्योदय में ही अपने अस्तित्व की उड़ानें भरी हैं। सदा-सर्वदा जब भी ज्ञान के** **प्रारब्ध की चर्चा होगी योगीराज श्री कृष्ण स्वयमेव सार्थक हो जायेंगे। उनके मुखारविंद से झरी 'गीता' अकेली ऐसी कालजयी पवित्र पुस्तक है, जिसे दुनिया के सभी संप्रदाय, सभी धर्म बराबर का सम्मान प्रदान करते हैं। त्रेता युग तक चलित गुरु परंपरा में श्री कृष्ण पहले ऐसे विचारक थे जिन्होंने सच्चे अर्थों में शिक्षक परंपरा का श्री गणेश किया।**

की चर्चा होगी योगीराज श्री कृष्ण स्वयमेव सार्थक हो जायेंगे। उनकी देशना की गंगोत्री में सदियों से मानवता अपनी संतुष्टि की डुबकी लगा रही है। उनके मुखारविंद से झरी 'गीता' अकेली ऐसी कालजयी पवित्र पुस्तक है, जिसे दुनिया के सभी संप्रदाय, सभी धर्म बराबर का सम्मान प्रदान करते हैं। त्रेता युग तक चलित गुरु परंपरा में श्री कृष्ण पहले ऐसे विचारक थे जिन्होंने सच्चे अर्थों में शिक्षक परंपरा का श्री गणेश किया।

उन्होंने वास्तविक शिक्षा के नए मानदंड निर्मित किये। अभूतपूर्व सिद्धांतों और नियमों का प्रतिपादन किया। श्री कृष्ण के ज्ञान के आलोक में सदियों ने उपलब्धियों के नित-नूतन अध्यायों का सृजन किया। भावों और विचारों के क्षितिज पर उनकी प्रेरणाओं के जो इन्द्रधनुष खिंचे; उनका आकर्षण आज भी यथावत है। हज़ारों वर्ष ढल गए पर श्री कृष्ण के ज्ञान का सूर्य दैदीप्यमान है। उनकी चेतना के शिखरों से आज भी समाधानों की नयी रश्मियाँ विस्तीर्ण हो रही हैं। सच्चा शिक्षक वही है जिसकी शिक्षाएं जीवन रूपांतरण का कीमियां बन जाएं। वह जो भी करे सभी को भाये। उसकी वाणी वरदान हो और आचरण एक ऐसी पथ ज्योति जिसका वरण हर कोई करना चाहे। उज्जैन में अपने गुरु ऋषि सांदीपनि के आश्रम में रहते हुए, जो भी श्री कृष्ण और उनके सहोदर बलराम ने सीखा उसका जीवन भर अनुपालन किया।

गुरु जीवन मूल्यों के सार्थक प्रयोग का उपदेष्टा है जबकि शिक्षक जीवन की सार्थकता का मूल स्रोत। अनुत्तरित प्रश्नों से व्याकुल मानवीय मन के लिए शांति का पनघट है सच्चा शिक्षक। आज जब समाज के सभी पदों पर नियुक्त व्यक्तियों की गरिमा का क्षरण दिखाई देता है तब शिक्षा और शिक्षक भी इससे अछूते नहीं हैं। अधूरे शिक्षक रिक्त और खंडित व्यक्तित्व का निर्माण कर रहे हैं। तभी तो समाज में इतनी किंकर्तव्यविमूढ़ता है।

शिक्षक की दृष्टि बड़ी पैनी होती है वह अपने शिष्य को पलक झपकते ही पहचानने की क्षमता रखता है। महाभारत युद्ध से पूर्व जब अर्जुन और दुर्योधन दोनों अपने-अपने

लिए श्री कृष्ण से सहायता मांगने जाते हैं तब मानों पहली ही नज़र में इस युद्ध के परिणाम का निर्णय हो जाता है। अत्यंत आदर भाव से अर्जुन उस समय निद्रा में लीन श्री कृष्ण के चरणों की ओर बैठता है जबकि अपने राजपाट की अकड़ और अहंकार में डूबा दुर्योधन उनके सिरहाने की तरफ बैठता है।

स्वाभाविक रूप से जब भी हम सोकर उठते हैं हमारी पहली नज़र अपने पांयतों की तरफ ही जाती है अत: उन्हें सबसे पहले अर्जुन ही दिखाई देता है। अत: पहली मांग का अधिकार भी स्वत: ही अर्जुन को मिल जाता है। आप जानते ही हैं कि अर्जुन श्री कृष्ण को और दुर्योधन उनकी सेना को मांग लेता है। महाभारत के युद्ध में पांडवों और कौरवों का सैन्य अनुपात 7:11 था। बावजूद इसके यह श्री कृष्ण की शिक्षाओं और मार्गदर्शन का ही परिणाम था कि विजय पांडवों की हुई।

श्री कृष्ण ने उपदेश से अधिक व्यवहार के प्रमाण को बल दिया। उन्होंने लोभ और संचय की प्रवृत्ति पर चोट करते हुए अपरिग्रह की प्रेरणा दी। उनका मानना था कि आवश्यकता से अधिक का संग्रह उचित नहीं तभी तो उन्होंने बचपन में ही ग्वालों की टोली के नेता बनकर उन घरों से मक्खन चुराना शुरू किया जो संग्रह में विश्वास रखते थे। वास्तविक मायनों में सच्चा शिक्षक पहले खुद करके सिखाता है श्री कृष्ण इसके भी प्रमाण सिद्ध हुए। बाल ग्वालों के दल की गेंद खेलते समय जब यमुना में जा गिरी तब वे स्वयं सबको पीछे करते हुए यमुना में उतरे और साहसपूर्वक कालिया नाग का मर्दन करते हुए सकुशल अपने साथियों के मध्य लौट भी आये।

बुराई चाहे घर में हो या समाज में एक सच्चे शिक्षक का कर्तव्य है कि वह उसके उन्मूलन के लिए एक मिसाल प्रस्तुत करे, श्री कृष्ण यहां भी प्रथम आये। जब उनके सगे मामा कंस के अत्याचारों से जनता हाहाकार कर उठी; तब उन्होंने किसी भी बात की परवाह किये बिना उसका वध करना ही उचित समझा।

ज़रूरत से ज़्यादा ज़ुल्म सहना भी पाप ही है अपनी इस शिक्षा को चरितार्थ करते हुए उन्होंने शिशुपाल को 100 बार क्षमा किया लेकिन उसके नहीं सुधरने पर फिर उसे मृत्यदंड देकर बुरे कृत्यों के परिणाम के प्रति समाज को चेताया भी।

कृष्ण शब्द जिस धातु से बना है उसका अंतत: शाब्दिक अभिप्राय होता है -अपने आकर्षण में बांधने वाला, वे इस मामले में भी सदैव अग्रणी रहे। उन्होंने जो कहा वही किया भी इससे उनके प्रति सभी के लगाव और सम्मान में अतिशय वृद्धि होती गयी। श्री कृष्ण 'गीता' के तीसरे अध्याय 'कर्मयोग' के २१ वें मंत्र में स्पष्ट करते हैं कि श्रेष्ठ व्यक्ति जैसा आचरण करते हैं अन्य मनुष्य भी उनका अनुसरण करते हैं और फिर यही व्यवहार लोक में सामान्यत: अपनाया जाने लगता है। OO

योगेश्वर कृष्ण जन्माष्टमी के अवसर पर विशेष...

गीता सार

क्यों व्यर्थ चिन्ता करते हो? किससे व्यर्थ डरते हो? कौन तुम्हें मार सकता है? आत्मा न पैदा होती है न मरती है।

जो हुआ, वह अच्छा हुआ जो हो रहा है, वह अच्छा हो रहा है। जो होगा, वह भी अच्छा ही होगा। तुम भूत का पश्चाताप न करो। भविष्य की चिन्ता न करो। वर्तमान चल रहा है।

तुम्हारा क्या गया, जो तुम रोते हो? तुम क्या लाये थे, जो तुमने खो दिया? तुमने क्या पैदा किया था, जो नाश हो गया? न तुम कुछ लेकर आये, जो लिया यही से लिया। जो दिया यही पर दिया। जो लिया इसी (भगवान) से लिया। जो दिया, इसी को दिया। खाली हाथ आए, खाली हाथ चले। जो आज तुम्हारा है, कल किसी और का था, परसों किसी और का होगा। तुम इसे अपना समझ कर मग्न हो रहे हो। बस यही प्रसन्नता तुम्हारे दुखों का कारण है।

परिवर्तन संसार का नियम है। जिसे तुम मृत्यु समझते हो, वहीं तो जीवन है। एक क्षण में तुम करोड़ों के स्वामी बन जाते हो, दूसरे ही क्षण में तुम दरिद्र हो जाते हो। मेरा – तेरा, छोटा – बड़ा, अपना – पराया मन से मिटा दो, विचार से हटा दो, फिर सब तुम्हारा है, तुम सबके हो।

न यह शरीर तुम्हारा है, न तुम इस शरीर के हो। यह अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी, आकाश से बना है और इसी में मिल जायेगा। परन्तु आत्मा स्थिर है, फिर तुम क्या हो? तुम अपने आप को भगवान के अर्पित करो। यही सबसे उत्तम सहारा है। जो इसके सहारे को जानता है, वह भय, चिन्ता, शोक से सर्वदा मुक्त है।

जो कुछ भी तू करता है, उसे भगवान को अर्पण करता चल। इसी से तू सदा जीवन – मुक्त का आनन्द अनुभव करेगा।

समाचार दर्पण

- **केंद्रीय** आर्य युवक परिषद के तत्वावधान में जंतर-मंतर पर 18वां कारगिल विजय दिवस के अवसर पर शहीद स्मृति यज्ञ का आयोजन किया गया व अमर शहीदों को श्रद्धांजलि दी गई।
- **5-6 अगस्त** श्रावणी उपाक्रम नव प्रविष्ठ ब्रह्मचारियों का उपनयन संस्कार आर्यसमाज, आर्ष गुरुकुल नोएडा में आयोजित किया जा रहा है, जिसमें आप सपरिवार सादर आमंत्रित हैं। मुख्य अतिथि माननीय विधायक श्री पंकज सिंह नोएडा, जिला गौतमबुद्धनगर।
- **अंतरराष्ट्रीय** आर्य महासम्मेलन का आयोजन श्री अम्बिका मंदिर परिसर मांडले (म्यांमा) बर्मा में 6,7,8 अक्टूबर 2017 को। म्यांमा, बर्मा में 122 वर्षों के आर्यसमाज के इतिहास में पहली बार किया जा रहा है। सम्पर्क : 9540040324
- **15 अगस्त** स्वतंत्रता दिवस प्रात: 8.00 बजे से आर्य समाज, आर्ष गुरुकुल में कार्यक्रम किया जा रहा है आप सादर आमंत्रित हैं।
- **दिल्ली आर्य** प्रतिनिधि सभा के तत्वावधान में आर्य विद्या परिषद, दिल्ली के अंतर्गत समस्त आर्य शिक्षण संस्थाओं का सामूहिक विचारोत्सव का भव्य आयोजन एवं विशिष्ट सांस्कृतिक प्रस्तुति शनिवार 22 जुलाई 2017 को तालकटोरा इंडोर स्टेडियम नई दिल्ली में सम्पन्न हुआ जिसमें माननीय हर्षवर्धन, डा. अशोक चौहान, महाशय धर्मपाल व अन्य महानुभावों ने भाग लिया।
- **दिल्ली आर्य** प्रतिनिधि सभा के पूर्व प्रधान एवं गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति डॉ. धर्मपाल जी का 9 जुलाई की प्रात: निधन हो गया। वे लगभग 76 वर्ष के थे। उनका अंतिम संस्कार पूर्ण वैदिक रीति के अनुसार पंजाबी बाग शमशान घाट पर किया गया। इस अवसर पर वैदिक विद्वान डॉ. महेश विद्यालंकार, सभा प्रधान धर्मपाल आर्य, पूर्व महामंत्री वैद्य इंद्रदेव, आर्य केंद्रीय सभा दिल्ली एवं अन्य अनेक आर्यसमाजों के पदाधिकारियों एवं आर्यजनों ने पहुंचकर अपने श्रद्धासुमन अर्पित किए। वे अत्यंत मृदुभाषी, लेखक, कुशल वक्ता एवं संगठन को नेतृत्व प्रदान करने की अद्‌भुत कला के धनी थे। उनकी स्मृति में शांति यज्ञ एवं श्रद्धांजलि सभा रविवार 16 जुलाई, 2017 को सायं 4-5 बजे तक वार्ष्णेय धर्मशाला, निकट डीएवी स्कूल शालीमार बाग, दिल्ली-88 में आयोजित किया गया। आर्य समाज, आर्ष गुरुकुल, वानप्रस्थ आश्रम नोएडा की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि।

'विश्ववारा संस्कृति' के नियम व सविनय निवेदन

1. यदि 'विश्ववारा संस्कृति' दिनांक 15 तक नहीं पहुंचती है तो आप प्रधान संपादक के नाम पत्र डालें। पत्र मिलते ही 'विश्ववारा संस्कृति' पुनः भेज दी जायेगी।

2. वार्षिक शुल्क तथा आजीवन शुल्क मनीआर्डर द्वारा आर्य समाज, बी-69, सेक्टर-33, नोएडा के नाम भेजें। वीपी रजिस्ट्री द्वारा नहीं भेजा जायेगा।

3. लेख संपादक 'विश्ववारा संस्कृति' के नाम भेजें, लेख छोटे, सरल, संक्षिप्त होने चाहिए तथा स्पष्ट, शुद्ध एवं सुंदर लेख कागज के एक ओर लिखे होने चाहिए।

4. 'विश्ववारा संस्कृति' में विज्ञापन भी दिये जाते हैं, परंतु विज्ञापन शुद्ध एवं वास्तविक वस्तु का ही दिया जायेगा।

5. यह 'विश्ववारा संस्कृति' पत्रिका समाज-सुधार की दृष्टि से मानव कल्याणार्थ निकाली जाती है। इसमें आपको धर्म, यज्ञ कर्म, समाज सुधार, देश व समाज की स्थिति, ब्रह्मचर्य, स्वास्थ्य, योगासन, सदाचार, संस्कार, नैतिकता, वैदिक विचार, शिक्षा आदि एवं अन्य ऐसे विषयों पर लेख पढ़ने को मिलेंगे।

6. 'विश्ववारा संस्कृति' के दस ग्राहक बनाने वाले सज्जन को एक वर्ष तक निःशुल्क 'विश्ववारा संस्कृति' भेजी जायेगी तथा पचास ग्राहक बनाने वाले सज्जन को दो वर्ष निःशुल्क पत्रिका भेजी जायेगी तथा उसका फोटो सहित जीवन-परिचय 'विश्ववारा संस्कृति' में निकाला जायेगा।

7. अन्य पत्र-पत्रिकाओं में पहले छपा हुआ लेख 'विश्ववारा संस्कृति' में नहीं छापा जायेगा।

8. अनाधिकृत रूप से लिए लेख, रचना, कविता के लिए प्रेषक ही उत्तरदायी होंगे।

आर्य कै. अशोक गुलाटी
प्रबंध संपादक

'विश्ववारा संस्कृति'
आर्य समाज, बी-69, सेक्टर-33, नोएडा, उप्र
संपर्क सूत्र : 0120-2505731, 4206693
9871798221, 9555779571
ई-मेल : info.aryasamajnoida33@gmail.com

समाज सुधार के कार्य

महर्षि दयानन्द ने तत्कालीन समाज में व्याप्त सामाजिक कुरीतियों तथा अन्धविश्वासों और रूढ़ियों-बुराइयों को दूर करने के लिए, निर्भय होकर उन पर आक्रमण किया। वे 'संन्यासी योद्धा' कहलाए। उन्होंने जन्मना जाति का विरोध किया तथा कर्म के आधार वेदानुकूल वर्ण-निर्धारण की बात कही। वे दलितोद्धार के पक्षधर थे। उन्होंने स्त्रियों की शिक्षा के लिए प्रबल आन्दोलन चलाया। उन्होंने बाल विवाह तथा सती प्रथा का निषेध किया तथा विधवा विवाह का समर्थन किया। उन्होंने ईश्वर को सृष्टि का निमित्त कारण तथा प्रकृति को अनादि तथा शाश्वत माना। वे त्रैतवाद के समर्थक थे। उनके दार्शनिक विचार वेदानुकूल थे। उन्होंने यह भी माना कि जीव कर्म करने में स्वतन्त्र हैं तथा फल भोगने में परतन्त्र हैं। महर्षि दयानन्द सभी धर्मानुयायियों को एक मञ्च पर लाकर एकता स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील थे। उन्होंने इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) दरबार के समय 1878 में ऐसा प्रयास किया था। उनके अमर ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश, संस्कार विधि और ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में उनके मौलिक विचार सुस्पष्ट रूप में प्राप्य हैं। वे योगी थे तथा प्राणायाम पर उनका विशेष बल था। वे सामाजिक पुनर्गठन में सभी वर्णों तथा स्त्रियों की भागीदारी के पक्षधर थे। राष्ट्रीय जागरण की दिशा में उन्होंने सामाजिक क्रान्ति तथा आध्यात्मिक पुनरुत्थान के मार्ग को अपनाया। उनकी शिक्षा सम्बन्धी धारणाओं में प्रदर्शित दूरदर्शिता, देशभक्ति तथा व्यवहारिकता पूर्णतया प्रासंगिक तथा युगानुकूल है। महर्षि दयानन्द समाज सुधारक तथा धार्मिक पुनर्जागरण के प्रवर्तक तो थे ही, वे प्रचंड राष्ट्रवादी तथा राजनैतिक आदर्शवादी भी थे। विदेशियों के आर्यावर्त में राज्य होने के कारण आपस की फूट, मतभेद, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, विधान पढ़ना-पढ़ाना व बाल्यावस्था में अस्वयंवर विवाह, विषयासक्ति, मिथ्या भाषावादि, कुलक्षण, वेद-विद्या का प्रचार आदि कुकर्म हैं, जब आपस में भाई-भाई लडते हैं और तभी तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता है।

आर्ष कन्या गुरुकुल सोरखा में नवनिर्मित यज्ञशाला में यज्ञ कराते हुए आचार्य डॉ. जयेन्द्र कुमार एवं अन्य आर्य महानुभाव।

सौजन्य : आर्य समाज, बी-69, सैक्टर-33, नोएड़ा

कार्यक्रम में उपस्थित मुख्य अतिथि श्री ठा. विक्रम सिंह, श्री सुधीर मिढ्ढा एवं श्री विनोद बुद्धिराजा।

ध्वज फहराते हुए का मनोरम दृश्य

आर्ष कन्या गुरुकुल सोरखा की ब्रह्मचारणियाँ जयघोष करती हुईं।

विश्ववारा संस्कृति
आर्य समाज, बी-69, सैक्टर-33, नोएडा (उ.प्र.) दूरभाष : 0120-2505731